The University of Osaka
Institutional Knowledge Archive

Title	DEVA KRTA JAYASIMHA VINODA
Author(s)	Malaviya, Dhar Lakshmi
Citation	大阪外国語大学学報. 1988, 76(1-2), p. 129-173
Version Type	VoR
URL	https://hdl.handle.net/11094/81203
rights	
Note	

The University of Osaka Institutional Knowledge Archive : OUKA

https://ir.library.osaka-u.ac.jp/

The University of Osaka

DEVA KRTA *JAYASIMHA VINODA*

Lakshmi Dhar MALAVIYA

DEVA 作 "JAYASIṀHA VINODA"

ラクシュミー・ダル・マーラヴィーヤ

デーヴァ（18世紀）はブラジ・バーシャーのきわめて重要な詩人である。彼のこれまでに発見された13の作品はすでに校訂、編集されている。新に発見された「ジャヤスィンハ・ヴィノーダ」は彼の1722年の作品であるが、これまでまったく知られていなかったものである。

デリーで見つかった写本と、彼の他の諸作品とに共通して見られる詩篇を比較、校訂しつつ、ここに「ジャヤスィンハ・ヴィノーダ」を編集した。

編者は作品相互に重複する詩篇の比較研究を通じて、彼の作品成立の編年を決定すべきことを序文において述べておいた。

भूमिका

कवि देव कृत लक्षण ग्रंथ 'जयसिंह विनोद' की एक प्रति मुझे दिल्ली में डा० नगेन्द्रजी से सन् '60 के आसपास प्राप्त हुई थी। वह किसी पुरानी पांडुलिपि से मशीनी कागज़ पर आधुनिक शैली में कुछ ही वर्ष पहले की गई प्रतिलिपि थी, जिसकी पुष्पिका भी आदर्श पांडुलिपि ही की थी—"मार्गमासे शुक्ल पक्षे द्वितीयायां चंद्रवासरे संवत् 1858 लिखितमिदं पुस्तकं सुखनंदन शुक्लेन स्वार्थ परोपकार्थचा।" खेद है पांडुलिपि के विषय में कोई जानकारी मुझे न मिल सकी। इस बीच एक चौथाई सदी बीत गई, अब तक 'जयसिंह विनोद' का संपादन-प्रकाशन हो ही जाना चाहिये था लेकिन ऐसा होना तो दूर, आश्चर्य है कि ग्रंथ का नामोल्लेख तक कहीं न हुआ। कवि देव के एक अनुपलब्ध लक्षण ग्रंथ 'सुमिल विनोद' को प्रकाश में लाने का सुखद सौभाग्य इन पंक्तियों के लेखक को पहले मिल चुका है। 'जयसिंह विनोद' कवि का द्वितीय ऐसा लक्षण ग्रंथ है जो अब पहली बार सर्वजन सुलभ हो रहा है। 'सुमिल विनोद' के अस्तित्ववान होने की पूर्व सूचना हमें थी क्योंकि मिश्रबंधु विनोद आदि इतिहास ग्रंथों में देव रचनावली के साथ उसका नाम भी था किंतु 'जयसिंह विनोद' का अता-पता न किसी साहित्येतिहास में मिलता है और न खोज रिपोर्टों में। दिल्ली से प्राप्त अकेली प्रति को दि० संकेत से अभिहित कर, 'जयसिंह विनोद' के संपादन में प्रयुक्त किया गया है।

ग्रंथ रचना से केवल 79 वर्ष बाद की होने के कारण प्रतिलिपि का पाठ विश्वसनीय, यद्यपि पाठ अनेक स्थलों पर खंडित है। ऐसे स्थल संपादित पाठ में शून्य संकेत द्वारा चिह्नित हैं। पाठ में 'उ' कार तथा 'इ' कार की अनावश्यक भरमार है, जो प्रतिलिपिकार की स्वभावगत देन मालूम देती है। 'तिहि', 'लागु', 'रहतु' जैसे वर्तनीगत पाठान्तर ढेर सारे हैं। "भृकुटी नचाइ भाल त्रिकुटी उचाइ कर चिकुटी रचाइ चितचायन चुनति फिरै" 2 : 14। दि० प्रति में पाठ "करि चिकुटी" है, जिससे इसका क्रियार्थक अन्वय "त्रिकुटी उचाइ करि" करने की भ्रांति हो सकती है। ऐसे स्थलों पर यथाशक्य सावधान रहते हुए संपादक ने प्राप्त वर्तनी को अपनी ओर से शोधना अनुचित माना है। प्रतिलिपि में छंद संख्या आद्यन्त क्रमानुसार मिलती है मगर उसमें अनेक भूलें हुई हैं। 'जयसिंह विनोद' सात अध्यायों में विभक्त है, देव के अन्य लक्षण ग्रंथों में छंद संख्या अध्याय के अनुसार मिलती है अतः यहाँ भी संख्या क्रम अध्यायों में विभक्त है।

'जयसिंह विनोद' के देवकृत होने में संदेह होने की कोई गुंजायश नहीं है। एक तो दर्जनों लक्षण दोहों-उदाहरणों पर कवि नाम की मुहर लगी है फिर 'जयसिंह विनोद' तथा देव के अन्य लक्षण ग्रंथों में राशि राशि छंद समान हैं—289 छंदों वाले 'जयसिंह विनोद' में 50 दोहे तथा 77 कवित्त सवैया 'भवानी विलास', 'सुजान विनोद' आदि देव के ग्रंथों में भी मिलते हैं। पहले इसी आधार पर 'सुमिल विनोद' तथा 'भवानी विलास' को देवकृत प्रामाणिक ग्रंथ माना जा चुका है अतः छंदों की समानता के साक्ष्य पर 'जयसिंह विनोद' को भी कवि की रचनावली में सम्मिलित करने पर किसी को आपत्ति न होनी चाहिये।

कवि इसका रचनाकाल संवत् 1779 बताता है—"सत्रह सै अरु उन्यासी संवत् विक्रम वर्ष। मारग सुदि ससि सप्तमी लखि जयसिंह सहर्ष॥"—1 : 48। अंतिम दोहे में देव अपने विषय में इतना ही प्रकाश डालते हैं—"नगर इटाए वास जिहि काश्यप वंश प्रमोद। देवदत्त कवि कृत सरस श्री जयसिंह विनोद॥"—7 : 50। यह दोहा देव काव्य रसिकों

का ध्यान हठात् 'भाव विलास' के अंतिम दोहे की ओर आकर्षित करता है— "द्योसरिया कवि देव को नगर इटाए वास। जोवन नवल सुभाव वर कीनो भाव विलास।"—5 : 80।

जैसा कि ग्रंथ नाम से प्रगट है, देव ने यह लक्षण ग्रंथ राजकुमार जयसिंह को समर्पित किया है—"श्री जयसिंह विनोद रस बरनि कह्यो कवि देव" 1 : 46। जयसिंह सांभर के खींचीवंशीय सामंत भगवंत सिंह के तीन कुँवरों में एक थे—1 : 40, जिन्होंने कवि को आश्रय प्रदान किया था—1 : 41।

ग्रंथ में कुल सात विनोद अर्थात् अध्याय हैं। मुख्य विषय है नायक नायिका भेद और गौणतः नवरस विवेचन। प्रथम विनोद में कवि के आश्रयदाता का वंशविरुद है, द्वितीय विनोद में भाव दशाओं का निरूपण। तृतीय विनोद में देव ने नायिका के मानस, कायिक, वाचिक विशेष भेद दर्शाए हैं, चतुर्थ तथा पंचम विनोदों में स्वकीया के भेद-भेदान्तर दिये हैं, षष्ठ विनोद परकीया नायिका एवं नायक भेद का है। सप्तम विनोद में नवरस विवेचन है, उदाहरण छंद आश्रयदाता के यशोगान के।

संपादन प्रणाली—'जयसिंह विनोद' (संक्षेप जय०) का यह पाठ संपादन उसकी एकमात्र उपलब्ध प्रति से किया जा रहा है। ग्रंथ के 289 छंदों में 127 छंदों का पाठ देव के अन्य ग्रंथों में भी सुलभ है इस कारण 'जयसिंह विनोद' की एकाकी प्रति होते हुए भी पाठ निश्चय करने में जहाँ पर्याप्त सहायता प्राप्त होती है वहीं अन्य ग्रंथों में उसी छंद के पाठ भेद पर विचार करते समय विशेष सावधानी बरतना आवश्यक है। कवि देव के युग तक आते-आते ब्रजभाषा इतनी परिमार्जित-परिष्कृत हो गई थी कि अकेले एक वर्ण परिवर्तन या अर्धमात्रालाघव के पाठान्तर को, उसके अर्थ संगत होने के कारण, आसानी से खारिज नहीं कर दिया जा सकता। देव ही का एक उदाहरण द्रष्टव्य है— "**ठाढ़े ह्वै भेंट भरी** भुज गाढ़े ह्वै बाढ़ी दुहू के हिए में सकासकी"—जय० 2 : 20 : 3। भवानी० 4 : 11 तथा रस० 8 : 85 में इसी चरण का पाठ है "ठाढ़े ही ठाढ़े भरी"।

इस कोटि के पाठान्तर लक्षण दोहों में अधिक मिलते हैं। जैसेकि "दंपति प्रेमांकुर प्रथम सो **सिंगार** थिति भाव"—जय० 2 : 1। सुमिल० 1 : 12 के इसी लक्षण दोहे में 'सिंगार' का पर्याय 'रति रस' दिया गया है।" विप्रलब्ध **तिहि ना मिलै** पिय संकेत बताइ"—जय० 5 : 6। सुजान० 4 : 16 में "पिय ना मिलै" तथा भवानी० 6 : 5 में "जेहि नहिं मिलै" पाठान्तर है। ऐसे पाठ भेद पद-पद पर मिलते हैं। कहना न होगा कि प्रसंग तथा अर्थ के विचार से अधिकतर पाठान्तरों की संगति बैठायी जा सकती है। अन्य ग्रंथों के पाठान्तर को 'जयसिंह विनोद' के उपलब्ध पाठ का स्थानपन्न करने से पाठ संपादन की अपेक्षा पाठ मिश्रण की आशंका अधिक थी अतः 'जयसिंह विनोद' में प्राप्त पाठ को, जो प्रसंग तथा अर्थ की दृष्टि से समीचीन है, स्वीकार किया गया है।

यह अवश्यमेव संभव है कि 'जयसिंह विनोद', 'सुमिल विनोद' तथा 'भवानी विलास' की अकेली-अकेली प्रति में मिलने वाले पाठ कवि द्वारा किये गये पाठ परिवर्तन न होकर प्रतिलिपिकारों द्वारा प्रक्षिप्त पाठ हों—"उलही हिय **प्रेम की** बेलि नवीनै"—जय० 2 : 14 : 1। "उलही हिय **नेह की** बेलि नवीनै"—भवानी 1 : 38।

लेकिन विभिन्न स्वतन्त्र शाखाओं की एकाधिक ग्रंथों की पोथियों में पाठ भेद मिलने से यह धारणा बलवती होती है कि स्वयं कवि ने छंद को अपने एक ग्रंथ से दूसरे ग्रंथ में समाविष्ट करते हुए छंद के पाठ में परिवर्तन तथा परिष्कार किया होगा। स्थान संकोच के कारण केवल 'जयसिंह विनोद' से कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं।

"त्यों सपने में **मिले** अपने प्रिय प्रेमपने छवि ही की **छकाछकी**।"—2 : 20। यह पाठ भवानी० 4 : 11

3

द्वारा पुष्ट है किन्तु रस० 8 : 85 में भिन्न पाठ मिलता है—"त्यों सपने में लखे"

"कोकिला के **टेरत निकसि जातो जीव** जो तिहारे गुन बुनत उधेरत न बीततो।" – जय० 2 : 42 : 4। लेकिन भवानी० 2 : 26 तथा सुख० 696 में पाठ है "कोकिला के बोलत निकरि जातो जीव" तथा सुख० 254 में "कोकिला के टेरत निकरि जातो जीव।"

"**दर्पन** की मुंदरी दृग दै पिय को प्रतिबिम्ब लखै दुखमोचन"—जय० 4 : 7 : 2। यद्यपि यह पाठ सुजान० 2 : 13 में है, भवानी० 3 : 41 में पाठान्तर "आरस की मुंदरी" है।

"जोरन **देत** नहीं मुख सों मुख छोरन देत न नीवी की फूंदै।"—जय० 4 : 9 : 3। इसी रूप में यह चरण सुख० 385 में मिलता है किन्तु रस० 8 : 13 तथा सुजान० 3 : 36 का पाठ है "छोरन देइ नहीं।" स्मरण रहे कि रस० तथा सुजान० का पाठ अनेक पांडुलिपियों द्वारा संपुष्ट है।

ये थोड़े से अन्य उदाहरण भी विचारणीय हैं—

"चंडकर मंडल ते ग्रीषम प्रचंड घाम उमड़्यो फिरति भूमिमंडल अखंड धार।" जय० 5 : 15।

"घुमड़्यो फिरति" के अतिरिक्त यही पाठ सुख० 145 में है किन्तु सुजान० 7 : 10 में चरण इस प्रकार है "ग्रीषम प्रचंड घाम चंडकर मंडल ते घुमड़्यो है देव भूमिमंडल अखंड धार।" इसी छंद का अंतिम चरण जय० तथा सुख० में यों है" **तनक तनक मनि** कनक नूपुर पाइ" और सुजान० में "रूप की बनक मनि"

"सिसकी भरति रही मिसकी न बात बिस की सी बेलि बाढ़ी **उत पति हिय** कंद ही"—जय० 5 : 20 : 2 तथा सुख० 705। इससे भिन्न पाठ सुजान० 4 : 43 एवं भवानी० 6 : 30 में मिलता है "उतपात हिय।" अगले पद का पाठ "देव लखि लौटि पगु दीनो पिय आइबे को" जय० तथा भवानी० में समान है, केवल सुजान० में पाठान्तर इस प्रकार है "देव लखि लौटि पिय दीनो पग।"

"**बैठी कहा उठि देखौ भटू** रंगभौन तुम्हैं बिन लागत सून्यो।"—जय० 6 : 29 : 1। यही पाठ भवानी० 7 : 43 में हैं पर रस० 8 : 77 तथा काव्य 6 : 30 पर पाठ है "बैठी कहा धरि मौन भटू।" जय० तथा भवानी० में छंद का दूसरा पद यों है "चातिक लौं **ररि देव तुम्हैं** सु" इसका पाठान्तर काव्य० तथा रस० में "तुमही ररि देव" मिलता है।

"साँझ सुहाग की माँझ उदै करि सौति सरोजनि को **मन लून्यो**"—जय० 6 : 29 : 4। इसका रूपान्तर "सौति सरोजनि को बन लून्यो" रस० 8 : 77, काव्य 6 : 30 तथा भवानी० 7 : 43 में है। जय० के पाठ में दूरान्वय दोष कहा जा सकता है "सौति को मन सरोजनि लून्यो" मगर दूरान्वय हमारे कवि का दूषण नहीं भूषण रहा है, उसने एक शब्द का पदांश तक तोड़-मरोड़कर दूरान्वय किया है अत: जय० के पाठ को कविकृत पाठ परिवर्तन मानना चाहिये।

"नैननि नटेरति" छंद में **चरणों** का क्रम जय० 2 : 14 तथा सुख० 111 में एक जैसा है लेकिन भवानी० 7 : 27 तथा सुजान० 2 : 40 में **चौथा-तीसरा**। यद्यपि छंद के अर्थ सौष्ठव में कोई कमी-बढ़ती इससे नहीं होती फिर भी दो ग्रंथों की एकाधिक स्वतंत्र शाखाओं वाली पोथियों में चरणों में विपर्यय प्रतिलिपिकारजन्य हो ही नहीं सकता। इसी दृष्टि से छंद का दूसरा चरण भी विचारणीय है—"भृकुटी नचाइ कर" जय० का यह पाठ सुख० सम्मत है परन्तु सुजान० तथा भवानी० में परिवर्तित पाठ मिलता है "भृकुटी उचाइ भाल त्रिकुटी नचाइ करि।"

4

'सुख सागर तरंग' को हम देव द्वारा अपने पूर्वरचित ग्रंथों में से छंद संकलित कर तैयार किया गया संग्रह ग्रंथ मानते आए हैं। पूर्वोक्त उदाहरण के आधार पर यह कहना होगा कि सुख० में इस छन्द—तथा जय० एवं सुख० के अन्य समान छन्दों का भी आगम स्रोत—जय० ही है।

तात्पर्य यह कि केवल अर्थ सौष्ठव के आधार पर निर्णयात्मक रूप से यह निश्चय नहीं किया जा सकता कि एक पाठ दूसरे ग्रंथ के पाठ से उत्कृष्ट अथवा अपकृष्ट है। और न यों देव के समस्त ग्रंथों का रचनाक्रम निर्धारित किया जा सकता है। कवि की कृतियों का पूर्वा पर रचनाक्रम जानने के लिए पहले उसकी सम्पूर्ण रचनाओं में समान छंदों वाले ग्रंथों के समुच्चय स्थिर कर, एक ग्रंथ समुच्चय को दूसरे ग्रंथ समुच्चय पर रखते हुए पुनः उन सबके बीच छंदों के आदान-प्रदान की सम्भावनाओं पर सूक्ष्मता से विचार करने की आवश्यकता है। देव के प्रायः सभी ग्रंथों में समान छंद मिलने के कारण ग्रंथों का रचनाक्रम निश्चित करना सर्वथा संभव है किन्तु है यह कार्य जटिल एवं समय साध्य !

'जयसिंह विनोद' तथा कवि देव की अन्य रचनाओं में समान छंदों की स्थिति छंद प्रतीक सूची देखने से स्पष्ट हो जाएगी, 'जयसिंह विनोद' पर सरसरी दृष्टि डालने पर भी क्रमबद्ध रूप में समान छंद पाकर आश्चर्य होना स्वाभाविक है। 'भवानी विलास' तथा 'जयसिंह विनोद' में समान छंदों की संख्या सर्वाधिक है। भवानी० छठे विलास दूसरे दोहे से बीसवें कवित्त तक प्रायः सभी लक्षण उदाहरण उसी क्रम से जय० के पांचवें विनोद में विद्यमान हैं। इसी प्रकार जय० प्रौढ़ा दस हाव 5 : 21 से 5 : 35 तक के लगभग सभी छंद समान क्रम से भवानी० 6 : 32 से 6 : 43 तक देखे जा सकते हैं। फिर भवानी० 7 : 30 से 7 : 42 तथा जय० 6 : 4 से 6 : 29 तक भी वे ही छंद हैं। इन दो लक्षण ग्रंथों में छिटपुट नहीं, थक्का-थक्का समान छंद होने से दोनों ग्रंथों में बड़े पैमाने पर आदान-प्रदान होना स्वयंसिद्ध है। देव ने ये दोनों ही लक्षण ग्रंथ दो भिन्न आश्रयदाताओं को समर्पित किये थे। कवि की अपनी कृतियाँ थीं, उस पर दूसरे के ग्रंथ से चोरी करने का अभियोग कैसे लगाया जा सकता है ! युग कोई हो, कवि भी समकालीन सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों की कठपुतली होता है। देव के समय में राजे रजवाड़ों तक की आर्थिक स्थिति ऐसी हो गई थी कि "राखि लेत हाथी चारों डारत चिरीन को !" जब "भिखारी को न भीख चाकर को न चाकरी" मिल रही हो, अन्य कवि अपनी फूटी किस्मत का रोना रो रहे हों कि "नर को बखान करै तोऊ न अरथ सरै, ऐसी कविताई को बहाय दीजे पानी में", आपा-धापी के वैसे कालखंड में जन्म लेकर अपनी कलम की कमाई से परिवार की उदरदरी भरने वाले कविवर देव ने नया आश्रयदाता पाने की आतुरता में अपने ही ग्रंथों से छंदों की हेराफेरी की तो भी वह क्षंतव्य है !

'जयसिंह विनोद' के संपादन में किये गये संशोधनों की सूची इस प्रकार है—

स्थल	दि० प्रति	पाठविकृति कारण	संशोधित पाठ	प्रमाण	
2 : 3	चंद्रनादिक	लेखन प्रमाद	चंदनादिक	सपादक	
2 : 5	दुहूं दुहूं के	लेखन प्रमाद	दुहूं के दुहूं	भवानी०	1 : 23
2 : 7	पौन	दृष्टि भ्रम	मौन	संपादक	
2 : 8	सेवसी गुलाब मल्ली कचनार	लेखन प्रमाद	सेवती गुलाब मल्लि कचनारनि	सुजान०	3 : 33
2 : 9	बान बौरन की ढौरई	दृष्टि भ्रम	बन बौरन की बौरई	सुजान०	2 : 36
				सुख०	107
2 : 10	ललक नवल कर पखियनि को	लेखन प्रमाद	ललकत बल करि कै पलक पखियनि को	सुजान०	2 : 30
	नेम रहत लोक लखि	दृष्टि भ्रम	नेम न रहत लोक लीक		

5

	पटुं	लिपि भ्रम	पटु	
2 : 12	रज	दृष्टि भ्रम	रस	भवानी॰ 1 : 30
2 : 13	रसपुंज	लेखन प्रमाद	रसपुंजन	सुजान॰ 2 · 29
	ह्वै	दृष्टि भ्रम	छ्वै	
2 : 14	नहेरति	दृष्टि भ्रम	नटेरति	सुजान॰ 2 : 40 भवानी॰ 7 : 27 सुख॰ 111
	करि	लेखन प्रमाद	कर	
2 : 16	रंगलली	लेखन प्रमाद	रंगरली	भवानी॰ 1 : 38
2 : 18	ज्योति मही सैं	दृष्टि भ्रम	ज्यों तिनही मैं	संपादक
2 : 20	बाढ़े	लेखन प्रमाद	बाढ़ी	भवानी॰ 4 : 11 रस॰ 8 : 85
2 : 22	नख	लेखन प्रमाद	लख	संपादक
2 : 26	न जोग	लेखन प्रमाद	संजोग	भवानी॰ 2 : 3
2 : 28	चकित	लेखन प्रमाद	चकति	भवानी॰ 2 : 5 सुजान॰ 2 : 39 सुख॰ 715, 486
2 : 31	अँखियनि में खुभि	लेखन प्रमाद	अँखियनि खुभि	सुजान॰ 3 : 8
2 : 32	अवलाज तजै	दृष्टि भ्रम	अवलाजन जे	सुजान॰ 4 : 5
2 : 37	काहू	लिपि भ्रम	कान्ह	सुजान॰ 3 : 26 भवानी॰ 4 : 46 काव्य॰ 7 : 29 काव्य॰ 10 : 69
2 : 38	जो जो कोई कहै सोई सोई	प्रक्षेप	जोई जो कहत कोई सो सो	भवानी॰ 4 : 52 सुख॰ 610
	जोई सोई कहै	प्रक्षेप	जो सोई कहत	
	काहू	लिपि भ्रम	कान्ह	
	बोलति	लिपि भ्रम	खोलति	
2 : 41	कौने	दृष्टि भ्रम	कीने	भवानी॰ 4 : 57
2 : 42	कोसर सिसिरीष हू ते	लेखन प्रमाद	केसर सिरीषहू ते	भवानी॰ 2 : 6 सुख॰ 254, 696
	ह्यांकु न्याउ	लिपि भ्रम	ह्यांउ न्याउ	
	निकसि करि जातो	पाठ प्रक्षेप	निकरि जातो	
2 : 43	प्रातकूल	लेखन प्रमाद	प्रतिकूल	संपादक
	जोव	लेखन प्रमाद	जोवन	संपादक
2 : 45	स्यामा	लेखन प्रमाद	स्यामै	सुजान॰ 3 : 35
2 : 46	उनीदीउ में उभेउ भरी	दृष्टि भ्रम	उनींदिउ में भेउ भरी	संपादक

6

2 : 49	दरे परे	लेखन प्रमाद	बरे परे	भवानी० 2 : 12 प्रेम० 3 : 1
3 : 5	रज	लेखन प्रमाद	रस	संपादक
3 : 6	मन्वै अमिनासी	लेखन प्रमाद	मनै अविनासी	संपादक
3 : 10	लगै	लिपि भ्रम	लरै	काव्य० 4 : 40 सुख० 847
	लही	दृष्टि भ्रम	सही	
3 : 15	उपरौ ति	लेखन प्रमाद	उपरौ तिय	संपादक
3 : 20	मोती बड़रे	लेखन प्रमाद	मोती बड़े बड़रे	भवानी० 3 : 14
	पैंजनी ओढ़नी है	दृष्टि भ्रम	पैंजनी बैंजनी ओढ़नी है	
3 : 23	वह ठाढ़ी बाल	लेखन प्रमाद	ठाढ़ी वह बाल	भवानी० 3 : 21 काव्य० 9 : 8
	लवनि	दृष्टि भ्रम	लचनि	
3 : 26	उर भरि	लेखन प्रमाद	ओर भीरु	सुजान० 5 : 55 7 : 32 सुख० 419, 719
	देखै नख	प्रक्षेप	देखै मुख	
4 : 1	तिहैं	लेखन प्रमाद	तिन्हैं	संपादक
	चुनैगी	दृष्टि भ्रम	चुवैंगी	संपादक
4 : 4	० ०	लेखन प्रमाद	दिन इत	भवानी० 3 : 35
4 : 6	माड	दृष्टि भ्रम	भाउ	सुजान० 2 : 12 सुख० 373
4 : 9	उहैं	लेखन प्रमाद	उन्है	सुजान० 3 : 36 रस० 8 : 13 सुख० 385
4 : 11	अंग	लेखन प्रमाद	अंक	सुजान० 3 : 41 भवानी० 7 : 8 सुख० 461
	वई	लेखन प्रमाद	वेई	
4 : 12	० ०	लेखन प्रमाद	ए नीको	सुजान० 2 : 49
	रवन	दृष्टि भ्रम	रचन	
4 : 14	वारिजत	लेखन प्रमाद	वारियत	रस० 8 : 17
	जात	दृष्टि भ्रम	जाल	
4 : 18	धरति	लेखन प्रमाद	धंसति	सुजान० 5 : 31 भवानी० 5 : 29
	डरु	दृष्टि भ्रम	उर	
4 : 19	नैन निज टेरि टेरि	दृष्टि भ्रम	नैननि नटेरि टेरि	सुजान० 4 : 52 सुख० 472

7

	०	लेखन प्रमाद	फेरि		
4 : 23	अलसात	दृष्टि भ्रम	अकुलात	सुजान०	7 : 47
				भवानी०	7 : 13
				रस०	8 : 34
				सुख०	480, 497
4 : 25	देखन देति	लेखन प्रमाद	देखन न देति	रस०	8 : 21
				सुख०	431
4 : 26	पग पग मैं	लेखन प्रमाद	पग पग मग मै	सुज़ान०	4 : 6
				रस०	8 : 70
				काव्य०	6 : 22
	निसदुनि	लेखन प्रमाद	निसदिन		
4 : 27	पियके	लेखन प्रमाद	पीके	सुजान०	4 : 50
				भवानी०	5 : 36
				सुख०	416
4 : 29	जो न	लेखन प्रमाद	जो	संपादक	
5 : 4	रोज	लेखन प्रमाद	सेज	भवानी०	6 : 2
				सुजान०	4 : 14
5 : 8	ललचाई	लेखन प्रमाद	ललचई	भवानी०	6 : 7
				सुजान०	4 : 19
	होसरि हियो भरि भुजानि	लेखन प्रमाद	हौंसनि हियोऊ भरि भुजानि		
	मई	दृष्टि भ्रम	नई		
5 : 9	पै सुवट	लेखन प्रमाद	मैं सुवटत	भवानी०	6 : 9
				सुजान०	4 : 49
	खटवति है	लेखन प्रसाद	खुवटत ही		
5 : 11	अबही तो भी तो	लेखन प्रमाद	अबहीं ते मीतो	भवानी०	6 : 12
	हमारी	प्रक्षेप	हमसो		
	छलक	लेखन प्रमाद	छलकैं		
5 : 12	करति मूरछत	लेखन प्रमाद	करत मूरछित	भवानी०	6 · 18
				सुजान०	4 : 28
				सुख०	654
	जानत	दृष्टि भ्रम	आनत		
5 : 13	भारे वे ०	लेखन प्रमाद	भारे वे कजरारे	भवानी०	6 : 20
				सुजान०	4 : 30
5 : 15	०	लेखन प्रमाद	उपवन	सुजान०	7 : 10
				सुख०	145
5 : 16	जो आवै	लेखन प्रमाद	जो आवत ही आवै	सुजान०	7 : 22
				सुख०	149

8

	कीव	दृष्टि भ्रम	कीच		
	चुंच	लेखन प्रमाद	चंचु		
5 : 17	विरमि	प्रक्षेप	विरूखि	भवानी०	6 : 25
5 : 18	मुनि ल	खंडित आदर्श	मुनिन लघु	संपादक	
5 : 19	निहरानी	लिपि भ्रम	नियरानी	संपादक	
5 : 20	आए तो त्रास ही की	लेखन प्रमाद	आए ते बासहू की	सुजान०	4 : 43
				भवानी०	6 : 30
				सुख०	705
	उघर्यो ०	दृष्टि भ्रम	उघट्यो मुसक्यान्यो		
5 : 29	०	दृष्टि भ्रम	पट्तानि	भवानी०	6 : 40
				सुजान०	5 : 42
				सुख०	796
	तानि	लेखन प्रमाद	तान		
	तो ०	लेखन प्रमाद	त्यों लालके		
	की	लेखन प्रमाद	के		
5 : 31	कछी	लेखन प्रमाद	कछ	भवानी०	6 : 43
5 : 32	अधराति	लेखन प्रमाद	अधरानि	भवानी०	6 : 44
	स्वास अरुभै	दृष्टि भ्रम	त्रास अनभै	सुजान०	5 : 33
5 : 34	निबोल	दृष्टि भ्रम	निचोल	भवानी०	6 : 46
				सुजान०	5 : 37
	भारत भू मैं विमुखनि होति	लेखन प्रमाद	माररन भू मैं विमुख न होत	सुख०	751
5 : 35	मैं	लेखन प्रमाद	को	भवानी०	6 : 47
5 : 36	झुके	लेखन प्रमाद	झकु	भवानी०	6 : 48
5 : 37	अंक	लेखन प्रमाद	अंग	भवानी०	6 : 49
				सुजान०	5 : 43
	ज्यों मुदित मकरंदनि मुर्यो परै	लेखन प्रमाद	अरविंद ज्यों मुदित मकरंदनि मुर्यो परै	काव्य०	7 : 27
	हू	दृष्टि भ्रम	दू		
5 : 42	घनी	लेखन प्रमाद	घन	भवानी०	7 : 14
	तैठ्यो	दृष्टि भ्रम	बैठ्यो		
5 : 48	बेचाए रही	लेखन प्रमाद	लचाए रहै	भवानी०	7 : 9
				सुजान०	5 : 57
	ओजनि न	लेखन प्रमाद	ओज बिन	सुख०	5 : 15
5 : 49	मलनि	लेखन प्रमाद	मलिन	संपादक	
6 : 1	मो हि्य री	दृष्टि भ्रम	मोहि् परी	प्रेम	4 : 31
				सुख०	772

9

6 : 2	ललचानी पै न तो	दृष्टि भ्रम	ललचानीये ततो	भवानी० 4 : 41 काव्य० 6 : 37 प्रेम० 3 : 39 सुख० 773
	तुमें हमें जैसी	लेखन प्रमाद	तुम्हें हम जैसी	
6 : 3	आस तौ	लेखन प्रमाद	आजु तौ	भवानी० 2 : 40 प्रेम० 3 : 40 सुख० 774
6 : 4	मोतिन झालरि झमकनि झूमक सारी	प्रक्षेप	मोतिन की झालरै झमक झूमकारी सारी	भवानी० 7 : 30
	जोतिन के जराऊ	प्रक्षेप	मोतिन जराऊ	
	मति लटपटी	प्रक्षेप	मनि लपटी	
	तरप	प्रक्षेप	तरिता	
	कै	दृष्टि भ्रम	ह्वै	
6 : 12	०	लेखन प्रमाद	छिपि	भवानी० 7 : 31
	केति	दृष्टि भ्रम	केलि	
	मानौ जानौ	लेखन प्रमाद	मानैं जानैं	
6 : 13	लीजिये	लेखन प्रमाद	दीजिये	भवानी० 2 : 43 7 : 32 काव्य० 2 : 55 सुख० 791
6 : 16	प्रंध	दृष्टि भ्रम	अध	संपादक
6 : 18	अरविंदन	लेखन प्रमाद	अरविंद	संपादक
6 : 21	चाहत छूवत	लेखन प्रमाद	चाह न छ्वावत	भवानी० 7 : 35
6 : 22	अनेक जिय नेक भांति एक हू अनेकहू न रिझावैं	प्रक्षेप	अनेक भाँति एकहू अनेकहू रिझावैं	भवानी० 7 : 36
	घेरि	लेखन प्रमाद	धरि	
6 : 26	होत भटू	दृष्टि भ्रम	हौं न भटू	भवानी० 7 : 40
	गुमाननि	लेखन प्रमाद	गुमानिन	
6 : 27	के	लेखन प्रमाद	की	भवानी० 7 : 41
6 : 28	परवसु	लेखन प्रमाद	पर्व सु	भवानी० 7 : 42
6 : 29	करै	लेखन प्रमाद	करि	भवानी० 7 : 43 काव्य० 6 : 30 रस० 8 : 77
	मन	दृष्टि भ्रम	वन	
7 : 1	नवरंसनु	लेखन प्रमाद	नवरस	काव्य० 3 : 7
7 : 3	रस कवि गावत	दृष्टि भ्रम	रस गावत	संपादक

10

7 : 4	मनौ	दृष्टि भ्रम	ये नौ	काव्य०	3 : 14
7 : 7	शाभहि बढ़े ते	दृष्टि भ्रम	शान्तहि बाढ़े	काव्य०	3 : 17
7 : 9	जिह	लेखन प्रमाद	जहं	भवानी०	8 : 25
				काव्य०	4 : 1
7 : 12	सराइ	दृष्टि भ्रम	सराहि	संपादक	
7 : 17	दारन	लेखन प्रमाद	दार गुन	संपादक	
7 : 21	भूषन	लेखन प्रमाद	भूपन	संपादक	
	ते न	लेखन प्रमाद	ते	संपादक	
7 : 23	रुहिरारु	लेखन प्रमाद	रुहिरा अरु	संपादक	
	विनाल	दृष्टि भ्रम	विताल	संपादक	
7 : 28	बन नास	लेखन प्रमाद	बन वास	संपादक	
	छाँड़ेई नैगी	लेखन प्रमाद	छाँड़ेई बनैगी	संपादक	
	रोग	लेखन प्रमाद	भोग	संपादक	

जयसिंह विनोद

जननि शिवा जेहि जनक शिव सिद्धि भवानी साथ।
विघ्न हरन सुभ करन जय देव सरन गननाथ ॥ 1 ॥
देव सबै सुखदायक संपति संपति सर्व सु दंपति जोरी।
दंपति दीपति प्रेम प्रतीति प्रतीत की प्रीति सनेह निचोरी।
प्रीति जहाँ रस रीति विचार विचार की बानी सुधारस बोरी।
बानी को सार बखान्यो सिंगार सिंगार को सार किसोर किसोरी ॥ 2 ॥
राधा कृष्ण किसोर जुग मूरति रति सिंगार।
वसुधा सर्वसु धारन सर्व सुधा की धार ॥ 3 ॥
सो खींची नृपवंस को सन्मुख सदा सहाइ।
राखी जिहि कीरतिलता फल लहाइ उलहाइ ॥ 4 ॥
पहिले नृप खींचीन को कहौं बंस विस्तार।
तब मैं बरनौं राधिका हरि मूरति सिंगार ॥ 5 ॥
जज्ञ रच्यो सर्वज्ञ विधि विधि हरि हर गुन गान।
प्रगट्यो पावक कुंड मैं नृप प्रचंड चहुँ आन ॥ 6 ॥
कर्‌यो काज सुरराज को भर्‌यो सुजस संभार।
धर्‌यो धर्म चहुंआन नृप हर्‌यो भूमि को भार ॥ 7 ॥
सो बिस्वंभर संभर्‌यो संभरि नगर नरिंद्र।
एकछत्र छितिपति भयो अवनी पर अवनिन्द्र ॥ 8 ॥

11

तंबू सो तान्यो है जंबूद्वीप पर जाको जस दीपक समीप करि राख्यो ससि भान को।
पूरब पुरंदर कुबेर मेरू मंदिर जलेस जवनेस से समानै जिहि आन को।
संका लाट भोट रूम सामगढ़ कोट जाके ओट दुरैं दिग्गज सुजोट के दिसान को।
भारो रूप भूपति विचार्‌यो प्रभु रूप नित चार्‌यो चक्क चक्कवै चितौत चहुंआन को ॥ 9 ॥
सकल मही जु थिर थाप्यो राज वीजु जाग्यो पुन्य जल पी जु सुधा सागर की बीची है।
चार्‌यो सिंधु कूल कूल उलह्‌यो समूल अनुकूल कूल कलदल साखा सुख सींची है।
जाको करिवार परिवार लीलै बैरिन को दान करवार दरवार की दरीची है।
दिल्ली सुलतान मध्य भूमि भूप भानु मारू मालौ सुलतान चहुंआन खान खीची है ॥ 10 ॥

सिरौज पति खींची नृपति तिहि कुल मालव भूप।
पीछे विक्रम भोज के भये त्रिविक्रम भूप ॥ 11 ॥
वसुधा सींची सुजस रस खींची कुल सिरताज।
स्नान हेत गजसिंह जू आए तीरथराज ॥ 12 ॥
बंधु सरोज सरोजकुल ओज उजास अरिंह।
कीनो बास प्रयागपुर भाग बली गजसिंह ॥ 13 ॥
बिधि बल प्रबल मलेछ कुल बाढ्यो विपुल विरुद्ध।
देवसिंह गजसिंह लौ गरजि लई जय जुद्ध ॥ 14 ॥
राखि लिये गौतम नृपति प्रबल मलेछनि मारि।
आइ मिले सुख पाइ चित सुभ सम्बन्ध विचारि ॥ 15 ॥
चौरासी गढ़पति सदन ऐंभीगढ़ सुभ थान।
गौतम नृप सुभ सिंह को दीन्यो कन्यादान ॥ 16 ॥
अंतर अंतरवेदि के गंगा जमुन समीप।
बसे कछुक दिन प्रेमबस ऐंभीपुर नृपदीप ॥ 17 ॥
खींची नृप गजसिंह के जनम्यो सुत जयसिंह।
महादानि गुनज्ञानि वर रनमुख निरभय सिंह ॥ 18 ॥
मातृवंस संनिहित हित सुत इत राखिय कोटि।
आप गये गजसिंह जू निज रजधानी लौटि ॥ 19 ॥
चहुआन खींची नृपति वत्स वंस सप्रोत।
इत हित तें जयसिंह जू गौतम गाए गोत ॥ 20 ॥
श्री जयसिंह कुमार के प्रगटे पाल्हन देव ॥
नौतम नेह बढ़ाइ कै गौतम कीनी सेव ॥ 21 ॥
श्री नृप पाल्हन देव सुत जनमे साहिबराउ।
राजकाज गौतमनि संग पर्‌यो निसानहि घाउ ॥ 22 ॥
पंद्रह से पचपन समै रण हनि सत्रु समाज।
ऐंभी साहिब देवजू कियो सकल गढ़ राज ॥ 23 ॥
प्रगटे साहेब देव सुत कूरम देव महीप।
श्री नृप कूरम देव सुत डोमन भौ कुलदीप ॥ 24 ॥

12

डोमन देव महीप सुत खींची जाजा देव।
जाजा तनै प्रताप भौ राजनि राजा देव।। 25 ।।
श्री प्रताप भौ भूप सुत परसराम नरनाह।
जम्बूदीप महीप जेहि बसै बांह की छाँह।। 26 ।।
परसुराम नृप के भये नृप नरहरि हरिकेस।
हरि कैसे सेवत चरन देस बिदेस नरेस।। 27 ।।

देव गजसिंह के सपूत जयसिंह जू के प्रगटे पाल्हन देव देव दुति सांचए।
पाल्हन महीप कुल दीपक साहेब देव साहेब के कूरम भौ सूर मद माचए।
कूरम महीप के वडोमन महीप देव डोमन के जाजा देव जग जस बांचए।
जाजा के प्रताप भौ प्रताप के परसराम तिनके अडारु सिंह लोकपाल पांचए।। 28 ।।

नृपति अडारू सिंह को जन्मनाम हरिकेस।
दान महेस दिनेस तप गौरव ज्ञान गनेस।। 29 ।।

जाको देस देसनि संदेसनि चलत जस देसहू बिदेस जाके भिक्षुक नरेस से।
राख्यो नहि लेस अरि कुल कौ कलेस दै दै धरे नख केस दरबेस दरबेस से।
खीची संभरेस महाराज हरिकेस जू के चाकर दिनेस से सुसाहेब हैं सेस से।
साधक धनेस से सभागुर गनेस से सपूत हैं महेस से सुनाती अमरेस से।। 30 ।।
भाख्यो भाखि कै अभिलाख्यो राखि कै न कछू राखि कै ब्रुवन अंत दसहूं दिगंत के।
भूप हरिकेस हरि के समीप जाइ बसे तज्यो पाकसासन को आसन दिगंग के।
पुन्य रस पोखि परितोषि निरदोख पद मोख लै सिधारे परलोक मैं अंत के।
दीनो सुत नाम तीनो वर्ग अभिराम रूप अर्थ धर्म काम धरि धाम भगवंत के।। 31 ।।

महाराज हरिकेस सुत षट षटमुख बलिवंत।
तीनि मैं तीनि त्रिलोकपति त्रिगुनांतम सुरतंत ।। 32 ।।
मर्दन हरि भगवंत नृप सभासिंह वर नाम।
तीनो सहज त्रिदेव रुचि कै सुचिधाम त्रिराम।। 33 ।।
दीरघु लघु सोदर सुखद भए राइ भगवंत।
धीरज निधि वीरज जलधि अधिक वीर बलिवंत।। 34 ।।
बाजी जिहि नौमति विजै गजराजी संयूत।
गाजीनृप भगिवंत भुव गाजीपुर पुरहूत ।। 35 ।।

डंका को सुनत डगमगत अतंक मानि लंका लौं ससंका थल बंका बरिवाने के।
भूप भजि ठाढ़े होत गूढ़ा गाढ़े तजि ढूँढ़त फिरत मढ़ सूढ़ मुनि थाने के।
खींची हरिकेस के नरेस भगवंत डर बिडरि डराने देस राजा राइ राने के।
बंद रहै बंदर विलाइत बिलानी जाइ पाट लगे पट्टन पयाने वेसखाने के।। 36 ।।
खींची मालवेस हरिकेस के सपूत दान भरूपूरहू-बरसत सुखमानि के।
देव नरदेव जिहिं सेवक ह्वै सेव करैं देवता असीसत पिता हित जानि के।
अग्गवल दिग्गज अग्गढ़ै दिगंतनि ते खेलत भरोसे भगवंत के भुजानि के।
० ० ० ० ० ।। 37 ।।

13

विजय सिद्धि भगवंत को दीन्ही सीताराम।
सुख संपति संतति सुनति जसु बसुमति विश्राम ।। 38 ।।
जोग जग्य जुग जुग किए श्री भगवंत सहाइ।
विधि हरिहर जुत रूप जिहिं रूप अवतरे आइ ।। 39 ।।
रूपराइ जयसिंह अरू कीरति सिंह सुनाम।
तीनौ सुत भगवंत के धर्म अर्थ अरु काम ।। 40 ।।
तिनमें श्री जयसिंह जू कियों देव सों हेत।
जय संपति आगमन जिहिं कियो सुजस को सेत ।। 41 ।।

दूलह नौल दौलत नवल दुलहिया को रसिक सिरोमनि चतुर चित चाडिलो।
मौजनि दर्याउ भारी फौजन को राउ घालै सूर सिर घाउ रनदान अति आडिलो।
गरीब निवाज सिरताज सिरताजनि को अखंडल रूप राजमंडल को माडिलो।
जाको रूपराइ राइ कीरति से भैया रैया राइ भगिवंत को कन्हैयालाल लाडिलो ।। 42 ।।
ज्ञान गरुड़ासन पुहुमि पाकसासन सौ तेज को हुतासन प्रभुत्वपन पीन को।
न्यारो नृपनीत को अन्यारो रनजीति को उज्यारो दान रीति प्रानप्यारो परवीन को।
राइ भगवंत सिंह जू को जयसिंह राइ विक्रम त्रिविक्रम बहिक्रम नवीन को।
संतन को लागु गुनवंतनि को अनुराग भागु सेवकनि को सुहागु सुंदरीन को ।। 43 ।।

नृपकुमार जयसिंह ज्यों सुंदर नंदकुमार।
देव सेवकनि कल्पतरू द्विज संकल्प उदार ।। 44 ।।
जानि जानि सुखदानि जन भजत जानकीजान।
कुल कुमुदाकर कलानिधि पूरन सकल कलान ।। 45 ।।
हृदै बसत जयसिंह के श्री राधा हरि देव।
श्रीजयसिंह विनोद रस बरनि कह्यो कवि देव ।। 46 ।।
रति सिंगार मूरति सदा सुंदर स्यामा स्याम।
होउ सदा भगवंत की संतति को सुखधाम ।। 47 ।।
सत्रह सै अरु उन्यासी संबत विक्रम वर्ष।
मारग सुदि शशि सप्तमी लखि जयसिंह सहर्ष ।। 48 ।।
बरनि कह्यो सिंगार रस जुगल रूप अभिराम।
ग्रंथ पंथ मुनि भरत को नृप विनोद कहि नाम ।। 49 ।।
श्री वृषभानु कुमारि जय जय श्री नंद कुमार।
श्री जयसिंह कुमार को सुहित सहित परिवार ।। 50 ।।

इति श्री महाराज कुमार श्री जयसिंह राइ विनोद देवदत्त कवि विरचिते राजवंस वर्णनपूर्वक श्रृंगार रस वर्णन प्रस्तावना प्रथम विनोदः।

अथ श्रृंगार रस वर्णन। दंपति प्रेमांकुर प्रथम सो सिंगार थिति भाव।
ताहि विभाव बढ़ावहीं प्रगटावें अनुभाव ।। 1 ।।
सातुक संचारीन सों भीतर बाहेर पूरि।
रति पूरन सिंगार सो जोवन जीवन मूरि ।। 2 ।।

अथ स्थित्यादि निरूपन । रति उपजति दर्सन श्रवन प्रिय सिंगार थिति मूल ।
चंद्र चंदनादिक[1] तहां है विभाव रितु फूल ॥ 3 ॥

1. चंद्रनादिक-दि०

सरस चेष्टा चपल दृग मंद हास अनुभाव ।
बाहिर भीतर बसु अमर क्रम संचारी भाव ॥ 4 ॥

अथ प्रेमांकुर सवैया ।

नंदलला वृषभान लली भए सामुहें देव संजोग सुभै कै ।
लोइन लोइन लागे अनूप दुहूं के दुहूं[1] रस रूप लुभै कै ।
मंद हंसी अरविंद ज्यों विंद अंचै गए डीठि सो डीठि खुभै कै ।
कंज की मंजिम गंजिम नैन उड़े चुनि चंचुनि चंचु चुभै कै ॥ 5 ॥

1. दुहूं दुहूं के-दि०

खिन एक ते खोइ गयो सो कछू तरुनी को तप्यो तन तावकु सो ।
नवनेह सनी छवि सौरई की न छुटाए छुटै थिर थावकु सो ।
सखियान सो देव छिपै न छिपाये लग्यो अंखियान मै जावकु सो ।
दृगकोर नचाइ चितै चितचोर चलाइ गयो चित चावकु सो ॥ 6 ॥

आलम्बन यथा ।

नव नायक मौन[1] हंस्यो निकस्यो मिलि बेलि बधू करि केलि कुटी ।
सु नचावत गावत कोकिल भौंर बजावत चंपकली चिकुटी ।
हरि राधिका खेलत देव तहां बंसुरी सरतान तजी त्रिकुटी ।
नर नागरि नैननि संग लै रंग उठी नचि नौल नटी भ्रकुटी ॥ 7 ॥

1. पौन-दि०

उद्दीपन विभाव यथा ।

बगर के बाग में उमड़ि अनुराग रह्यो घुमड़ि छटा सी बन कुंजनि की झिरकी ।
देव सेवती[1] गुलाब मल्लि कचनारनि[2] अनार डार पाडर महाडरन थिरकी ।
आंव कुल बकुल कदंब कुंद मंदार उदार भू अमंद मकरंद बिंदु छिरकी ।
बोरन की बौरई लै औरई ह्वै आई देव एक बार उझकि किवार खोलि खिरकी ॥ 8 ॥

1. सेवती-दि० । 2. मल्ली कचनार-दि० ।

अथ रति शृंगार के अनुभावक अनुभाव ।

नैन भरि नैसुक निहार्यो जबहिं तें न छुटत हिय ही ते सखि सौरई ।
देखे बिन देव नखसिख बिष बीछी को सो बिखरो परतु रोम रोमनि में रौरई ।
खेलत गई ही री अनोखी सखियनि छाँड़ि लील तिन आई अंखियनि विष कौरई ।
बाटहू चलत बाट परै ब्रज पौरि पौरि दौरि दौरि लागे बन बौरन की बौरई[1] ॥ 9 ॥

1. बान बौरन की ढौ रही—दि० ।

15

लाल गुन जाल परे लोयन खंजन ललक़त बल करि कै पलक पखियनि को[1]।
प्रेम की कसौटिन सो हेम सो कसत कुल नेम न रहतु [2]लोक लीक[3] लखियनि को।
भौंहें बिदुरावत दुरावत बनै न डीठि फांसी भयो हांसी को समूह सखियनि को।
राखै अवलाजु अब लाज पटु[4] भेरो तऊ करै बटपार भट मेरो अंखियनि को ॥ 10 ॥

1. ललक नवल कर पखियनि को-दि०। 2. नेम रहतु-दि०। 3. लखि दि०। 4. परू-दि०।

शृंगार प्रकास संचारी दोहा। संचारी तंभादि कहि आठ भांति सारीर।
निरवेदादि अतर तेंतिस कहिये धीर ॥ 11 ॥

सारीर यथा। तंभ स्वेद रोमांच अरु बेपथु अरु सुरभंग।
बिवरनता आंसू प्रलै ये सातुक रस अंग ॥ 12 ॥

1. रज-दि०।

गरे गुंजमाल धरे मंजरी रसाल रसपुंजन[1] पग्योई सो लग्योई दृग ह्वै रहै।
आली को अकेली मिलै पूछनि के लोभनि पै पूछि न सकति छति छोभनि ही छ्वै[2] रहै।
उठे जो फरकि ओठ[3] उठति न जीभ मुख आखर कढ़ै न उर आनन्द सोवै रहै।
लाज की मचनि देव नैननि नचनि सोचि बचन कढ़ै न सकुचनि चुप ह्वै रहै ॥ 13 ॥

1. रसपुंज-दि०। 2. ह्वै-दि०। 3. 0-दि०।

अंतर संचारी।
नैननि नटेरति न टेरति सुनति बैन ही मैं हरि गुननि[2] उघेरति बुनति फिरै।
भृकुटी नचाइ भाल त्रिकुटी उचाइ कर[3] चिकुटी रचाइ चितचायन चुनति फिरै।
सुनी अनसुनी करि कानन कनेखा देखि भीजि अंसुअनि कनसुवनि सुनति फिरै।
दौरि दौरि पौर द्वार खिरकी किवार खोलि गुपत तमासे सीसु सांस लै धुनति फिरै ॥14॥

1. नहेरति-दि०। 2. गुन-दि०। 3. करि-दि०।

० ० संचारिनु की भीर।
तातें मिलि मिलि उठत हैं मानुस अरु सारीर ॥ 15 ॥

दूलह नील नई दुलही उलही हिय प्रेम की बेलि नवीने।
नैन दुहू के चले चितचैन चुके न रुके न झुके पट भीने।
रंगरली[1] उर लीने उछाह अली मुसक्याइ चली परवीने।
प्रेम की संपति दंपति देव हिये हिय खोलि मिले रस भीने ॥ 16 ॥

1. रंगलली-दि०।

एहि बिधि भावनि रति बढ़ै होइ सकल सिंगार।
सो रति पहिले प्रिय श्रवन दरसन होत उदार ॥ 17 ॥

16

रतिहेतु प्रिय श्रवन यथा ।
सांवरो सुंदर नंदकुमार सु आवत है नित ही इतही मैं ।
खोरिन खोरिन गोकुल गोरिन टोहत सोहत है हितही मैं ।
यों सुनि देव कछू गुनि कै गुन भावती खेलत ज्यों तिनही मैं[1] ।
रूप लुभ्यो उर आइ लुभ्यो सु चुभ्यो अंखियानि चुभ्यो चितही मैं ।। 18।'

1. ज्योति मही मैं-दि० ।

प्रिय श्रवन तें प्रिय चित्र दर्शन ।
चित्र विचित्र लिख्यो पिय मित्र लख्यो त्रिय देव सु प्रेम की खोरी ।
औचक ही अनिमेष कनेखनि देखनि ही में भई चित चोरी ।
पीठ दै दै पट तानि चितौति सुतौति नवीन सखीन की ओरी ।
लाज के साज इलाज बिना नव मंग समाज न जानति भोरी ।। 19 ।।

स्वप्न ।
धाइ के अंक में सोई निसंक सु पंकज सी अंखियान झकाझकी ।
त्यों सपने में मिले अपने पिय प्रेमपने छवि ही की छकाछकी ।
ठाढ़े ह्‌वै भेंट भरी भुज गाढ़े ह्‌वै बाढ़ी[1]दुहू के हिए में सकासकी ।
देव जगी रतियाहू गई न तिया की गई छतिया की धकाधकी ।। 20 ।।

1. बाढ़े-दि० ।   2, 0-दि० ।

द्वार ह्‌वै कढ़्यो री ब्रजग्वार लिये नंदक्वार मैं हू[1]दुरि न्यारो ह्‌वै निहारो सखियन तें ।
ता घरी तें चंचल चितौनि चितचोर चित लै गयो चुराई मधु जैसे मखियन तें ।
रूप रस सागर अनूप गुनआगर मैं जाइ मिल्यो हंस उड़ि प्रेम पखियन तें ।
चारौ दिस रैन दिन दूसरो न देखौ छिन एकौ बिसरै न निसरै न अंखियन तें ।। 21।

1. 0-दि० ।

लै कर बीन लला परवीन बजाइ नवीन कलानख सो नख ।
सो सुनि कै धुनि आई उतै ब्रषभान लली सो लगी लख[1] सो लख ।
आइ मिली अंखियां पट ओट मनो जु मनोजधुजा झख सो झख ।
कानन तानन राखि गये मृदु भाखि कै चाखि गए चख सो चख ।।22।।

1. नख-दि० ।

अथ शृंगार भेद दोहा । रस सिंगार के भेद द्वै हैं संयोग वियोग ।
प्रथम एक विधि दूसरो चौबिधि बरनत लोग ।।23।।
सो पूरब अनुराग अरु मान प्रवास वियोग ।
चार्‌यो भेद वियोग के आनंद रूप संजोग ।।24।।

17

प्रथम होत दंपतिन के पूर्वनुराग वियोग।
तहां दसा दस विरह की ता पाछे संयोग ॥25॥
फिर वियोग संयोग तें मान प्रवास ससोग।
या विधि मध्य वियोग के होत सिंगार संजोग[1] ॥ 26 ॥

1. न योग-दि०।

देखि देखि सुनि सुनि सुरति रस सुरतरु बहु साख।
गुप्त प्रगट फलफूल दल प्रथम होहि अभिलाख ॥ 27 ॥

गुप्ताभिलाख।

बैठी सीस मंदिर मैं सुंदरि सवारही की मूंदि के किवार देव छवि सों छकति है।
पीत पट मुकुट लकुट बनमाल धरि भेष करि पी को प्रतिबिंब मैं तकति है।
होति न निसंक उर अंक भरि भेंटिबे को भुजनि पसारति समेटति जकति है।
चौंकति चकति[1]उचकति चितवति चहुं भूमि ललचाति मुख चूमि न सकति है॥ ॥28॥

1, चकित-दि०।

गौने की बात चली गुरु लोग मैं भौंहनि भोग संजोग बिसेखै।
लोइन कोयन लाल की लाली ह्‌वै आली की ओर कछू लखि लेखै।
आनंद सो उर मैं उमग्यो सुख साजनि लाजनि पूरि परेखै।
भूमि के भूमि खनै नख नेमिख नैननि नैन कनैखनि देखै ॥ 29 ॥

द्वितीय दसा चिन्ता।

लाजहि तो तजिबोई इलाज अकाजनि को रहिहै तो रहौ किन।
देव संदेसनि देह बिदेह मिले उड़ ह्वै दहिहै तो दहौ किन।
प्रीतम मीत मिलाप की चीत अमीत गरो गहिहै तो गहौ किन।
क्यों हू मिलौ हिय खोलि हिलौ कहूं कोऊ कछू कहिहै तो कहौ किन ॥ 30 ॥

असमरन तृतीय दसा।

सुंदर सरूप ब्रजभूप कौ कुंवर लखि आनंद अनूप अंखियनि खुभि[1]रह्यो है।
जागत विवेकौ नहिं लागत न एकौ पल कोपलु लगावै छवि छोभ छुभि रह्‌यो है।
देव चितवनि लोल बोलनि हंसनि फंसि कुंडल कपोल मन लोभि लुभि रह्‌यो है।
देखत न भूलै अनुदेखे उर सूलै हित लालच लगाइ चित लाल चुभि रह्‌यो है॥ 31 ॥

1. अंखियनि मैं खुभि-दि०

18

गुनकथन चतुर्दसा।

सुंदर सांवरो रूप को मंदिर चाल चले गुनगर्व गहीली।
जोवन के बल मानी हंसै अलसानि लखै अंखियां उनमीली।
देव सुने सब सीस धुनै अवलाजन जे[1] अब लाज लजीली।
रैहै क्यों ऊजरी दो कुल की ब्रजगूजरी गोकुल की गरबीली॥ 32॥

1. अवलाज तजै-दि०

उद्वेग पंचम दसा।

बैरिनि सेज करेजिन सालति ज्वाल ज्यों तेज तपै अति यामै।
फूल उतै करि सूल महा दुख मूल लगै सुख की बतिया मैं।
बीरी बगार दै नीरी न ल्याउ सुहाति न कातिक की रतिया मैं।
आंखिन ओट हहा किन राखि छपाकर छेद करै छतिया मैं॥ 33॥

प्रलाप षष्ठम दसा।

कूकनि कहू की मिस भूकनि कुहू की हिय हारी हौं दुहूं की हरि जाऊंगी तो जाऊंगी।
कुल दुलहीपनो दुलार धरि राखो री पराए घर वार पर जाऊंगी तो जाऊंगी।
गहौंगी निसंक भरि अंक देव काहू को कि या ब्रज कलंक करि जाऊंगी तो जाऊंगी।
खोलिदै किवारी खिन आंखिन खिलारी को मिलौंगी तो मिलौंगी मरि जाऊंगी तो जाऊंगी॥ 34॥

ग्रीषम बन झकझोरि बन बेलि ज्यों बिरह आगि अंगनि उमगि जरि जाऊंगी।
उरध उसासनि उगिल चिनगारी छूटि छूटि फुलझरी ज्यों फुहारे झरि जाऊंगी।
तीखी दृगकोरनि की मारी मुख मोरन की मार की मरोरनि मुरकि मरि जाऊंगी।
देव जो मिलौंगी न सनेह भीजि भाउन सों मूरति सलोनी अंसुवनि गरि जाऊंगी॥ 35॥

उन्माद सप्तम दसा।

कबहूं अकेली गृहकेली के बगीचा बन बेली के नवेली धाइ पाइनि परति है।
कबहूं बिलोकि बाल तरुन तमाल करि घूंघट बिसाल घनकुंज मैं घिरति है।
कैसी भई देव पिक मोरन निहोरति है भौंरनि चकोरनि ह्वै तम ही भिरति है।
राखि कै सकोच धाम मोचति नहीं सु ब्रज धाम-धाम स्याम को बुलावति फिरति है॥ 36॥

व्याधि अष्टम दसा।

मंजुल मंजरी पंजरी सी ह्वै मनोज की ओज सम्हारति चीर न।
भूख न प्यास न नींद परै परी प्रेम अजीरन के जुर जीरन।
देव घरी पल जाति घुरी अंसुवानि के नीर उसास समीरन।
आहन जाति अहीर अहे तुम्हें कान्ह[1] कहा कहौ काहू की पीर न॥ 37॥

1. काहू-दि०।

19

जड़ता नवम दसा ।

जोई जो कहत कोई सो सो[1] करि थाकी देव जो सोई कहत[2] करि गयो कछु डावरो ।
राज करो ऐसी[3] लाज करत अकाज कान्ह[4] आज तो समाज घर बाहर को धावरो ।
रोवति सी सोवति न बासर विभावरी हूं बावरी हू के सोचन भयो है ब्रज बावरो ।
बोलति न साथ पाइ डोलति न हाथ पाइ खोलति[5] न हियो हाथ पाइ रूप रावरो ।। 38 ।।

1. जो जो कोई कहै सोई सोई-दि० । 2. जोई सोई कहै-दि० 3. आसी-दि० । 4. काहू-दि० । 5. बोलति-दि० ।

अभिलाषादिक नव दसा मध्य पूर्व अनुराग ।
दसम दसा करुणा विरह सुद्ध करन दुख दाग ।। 39 ।।
ताते सो नहिं बरनिये जो बरनिये सुभाखि ।
एक सुकवि तिहिं मूरछा बरनत हैं रस राखि ।। 40 ।।

अथ दसम दसा मूरछा ।

औध दिन अधिक बितीते उर आधि बढ़ि हा धिक जीवन कर्‍यो ऊध सांस सरि सरि ।
व्याकुल ह्वै घूमि घूमि भूमि गिरी झूमि तिय हेरैं लोग टेरैं हरि लीनी कीने[1] हरि हरि ।
ताही समै प्रानपति आए ते सुनाए सुनि आए तन प्रान जम कालहू सो लरि लरि ।
पंकज मुखी को मुख पंकज मलीन चूमि लेत परजंक तें ससंक अंक भरि भरि ।। 41 ।।

1. कीने-दि० ।

अथ सखी सों नायक सों विरह निवेदन ।

आंसुन के सलिल सिरातिए न छाती जो उसास लागि कामागि भसम होतो ही ततो ।
केसर सिरीषहू ते[1] कोरी जो न होती तो किसोरी से कुसुमसर कैसी भांति जीततो ।
देवजू सराहिये हमारो ह्यांउ न्याउ करि[2] नाहित अहित चेत करतो जु चीततो ।
कोकिला के टेरत निकरि जातो[3] जीव जो तिहारे गुन बुनत उधेरत न बीततो ।। 42 ।।

1. कोसर सिसिरीष हू ते-दि० । 2. ह्यांकु न्याउ-दि० । 3. निकसि करि जातो-दि० ।

सखी की सिक्षा ।

दूलहै सुहाग दिन तूल है तिहारे तिन तूल है निहारे सो अपान ही की तूल है ।
भूल है न भाग की प्रवाह सो दुकूल है दुकूल है उज्यारो देव धारो अनुकूल है ।
कूल है नदी को प्रतिकूल[1] है गुमान री अहू लहै सु जो न तो न जोवन[2] अहू लहै ।
हूल है हिए मैं हियहू लहै न चैन री विहार पलहू लहै निहार पलहू लहै ।। 43 ।।

1. प्रातकूल-दि० । 2. जोव-दि० ।

ताननि रंगीन अभिलाष राखि सकौंगी न प्राननि प्रवीन विष काननि गिलत ही ।
देव दृगमूलनि के सूलनि मरौंगी द्रुम वेलि दल मूलनि ते फूलनि खिलत ही ।
राखै अब लाज अबला जु कौन काज पसु पक्षिन समाज पेखि प्रेम सों पिलत ही ।
वृंदावन आज बनमाली बनि आवतु रीआली बनि आवतु तुम्हें हूं तो मिलत ही ।। 44 ।।

प्रथम प्रपंच मिलन ।

दूसनि दुसह रिस आंसू सनि रूसनि रह्यो मन मसूसनि ही मसकि मसकि कै ।
देवजू निपुन गुन बरनि बरनि कामसरनि करेजे रहै कसकि कसकि कै ।
चैत उपवन चितै पवन अचेत कीनी संकेत सुहायो चित चसकि चसकि कै ।
बदन मयंक दृग पंकज मिली मिलाय धाय भरि अंक स्यामै[1] मसकि मसकि कै ।। 45 ।।

1. स्यामा-दि० ।

सुखसदन संगम ।

जागी सब जामिनि पलक जब लागी तरुनीन की नींद बरुनी पयोद भरि लई है ।
ता समै महल लाल आए लहलहे मन उलहे मनोरथनि मोद भरि लई है ।
उनींदिउ में भेउ भरी[1] अँडति बँडति उर उरोज पीठि चहुं कोद भरि लई है ।
भीने पट लपटी झपट गहि गोद भरि आमोदनि आनंद विनोद भरि लई है ।। 46 ।।

1. उनीदीउ मे उभेउ भरी-दि० ।

सखी को परिहास ।

ओठनि ओठ दै कंठनि कंठ हिये मैं हियो दै खएनि खए खंगि ।
जानु मैं जानु भुजानि भुजा परजंक मैं अंक मैं अंकु थिरै थंगि ।
एहो लजीली अहो गरबीली रंगीली नयौ हितु नातो लियो अंगि ।
संग ही संग छ्वै अंग गही अंग लाल लई अपने रंग ही रंगि ।। 47 ।।
एहि विधि भावनि रति बढ़ी प्रगट्यो प्रेम दसानि ।
पूर्ण सिद्ध सिंगार रस नव संगम सुखदानि ।। 48 ।।
पात्र मुख्य सिंगार की सुद्ध सुकीया नारि ।
प्रथम प्रेम नव संग के बरे परे[1] दिन चारि ।। 49 ।।

1. दरे परें-दि०

इति श्री महाराज कुमार श्री जयसिंह विनोद देवदत्त विरचिते पूर्ण सिंगार भाव दसा भेद भेदांतर प्रथम प्रेम नवसंगम वर्णनो द्वितीय विनोद : ।

अथ नाइका वर्णन । मुख्य रसनि सिंगार रस दंपति है आधार ।
दंपति संपति नायिका ताको करत विचार ।। 1 ।।
कुल तिय तरुनी सील निधि सलज सलोन प्रवीन ।
विभौ विभूषित नाइका प्रीतम प्रीति अधीन ।। 2 ।।
मन कायक वच नायका माया रूप विलास ।।
मनसा कायक वाचिकौ तीनि अवस्था तासु ।। 3 ।।
तहां अवस्था मानसी नौ रस त्रिगुन त्रिभेव ।
आनंदा अरु विमोहा कहत प्रकासा देव ।। 4 ।।

21

अथ मानसी द्वादस अवस्था तत्रादौ द्वादस वर्ष प्रथम नाइका आनंदा ।

रस सिंगार अरु हास्य रस अदभुत भय रस[1] रूप ।
है आनंदा अवस्था मन आनंद सरूप ।। 5 ।।

1. रज-दि० ।

हारी सिखाइ सिखावनहारी न सीखि सिखी बिसवानि बिनासी ।
देव सिखाइ दियो यकबार मनै[1] जु मनोज गुरु अविनासी [2]।
जोवन ज्योति सों जीति लई जिहि कातिक राति की पूरनमासी ।
मेचक सी चित चैननि मैं बस्यो नैनहि नेह सु बैनन हांसी ।। 6 ।।

1. मन्वै-दि० । 2. अमिनासी दि० ।

अथ मानसी द्वितीय दसा विमोहा ।

वीर रौद्र करुना रसनि तम गुन मई बखानै ।
कहौ विमोहा तापसी मन तामस पहिचानै ।। 7 ।।
प्रीतम मीत नई नित प्रीति रिती तिहते जब हा तिन लागे ।
लै करुना उतसाह कथा उत साहस बैन अधीतन लागे ।
देव जू जोति हिए बिसमै रिस मैं निसबासर बीतन लागे ।
चातुरताई की घातैं हितू सुचितौनहि ते बत रीतन लागे ।। 8 ।।

अथ मानसी तृतीय अवस्था ।

सत्वगुन मई प्रकासा शांत भय वीभत्स ।
परम अवस्था नाइका मन प्रसाद गोवत्स ।। 9।।
दिना दस जोवन जीवन री मरियै पचि होइ जु पै मरिबै ना ।
सबै जग जानत देव सुहाग की संपति भौन रही भरिबै ना ।
कहा कियो सौति कहाय के काहू लरै[1]पिय लोग तऊ लरिबै ना ।
असीसन हू के सही[2] करि बैन कछू अब मोहि रही करिबै ना ।। 10 ।।

1. लगै-दि० । 2. लही-दि० ।

इति नाइका की प्रथम अवस्था मानसी ।

होत अवस्था मानसी द्वादस वर्ष पर्यन्त ।
यों ही काइक नाइका सात सात संवंत ।। 11 ।।

अथ नारी की द्वितीय अवस्था कायक ।

देव अदेव गंधर्व अरु कहै सुद्ध गंधर्व ।
अरु मनुष्य गंधर्व अरु मनुष्य अंस सु सर्व ।। 12 ।।

22

सात सात वय वर्ष पर आवत पांचौ अंस।
नारि वर्ष पैंतीस लौं तिहि तिहि अंस असंस ॥ 13 ॥
देविदेवि गंधर्व अरु गंधर्वी त्रिय होइ।
सु गंधर्व मानुषी अरु सुद्ध मानसी सोई ॥ 14 ॥
पांचौ कायक भेद करि कहौ नाइका पांच।
उपरौ तिय[1] पैंतीस ते रस की रहति न आंच ॥ 15 ॥

1. उपरी ति-दि०

अमर अंस गौरी कहौ लक्ष्मी गंधर्वंस।
मानुष अंस सरस्वती सुखदाइक सर्वंस ॥ 16 ॥
अमर अंस चंदन उचित गंधर्वांस संभोग।
मानुष अंस सुवंस कर तानत सज्जन लोग ॥ 17 ॥
स्यूं वर्षय देवता कन्या मूरतिवंत।
साढ़े दस सत अंस तिहि मिलित सु चौदह अंत ॥ 18 ॥
तासों चौदह वर्ष लौं सुद्ध मिलित अमरंस।
भोग जोग नहिं भामिनी यों अपि गंधर्वंस ॥ 19 ॥

नासिका मैं नथ मोती बड़े बड़रे[1] मुकतान की कानन बारी।
कंकनी हाथ बजैं पग पैंजनी बैंजनी ओढ़नी है[2] जरतारी।
पूरन इंदु तें सुन्दर आनन रूप को मंदिर राजदुलारी।
धाइ के गोद बढ़ावति मोद विनोद भरी वृषभानदुलारी ॥ 20 ॥

1. मोती बड़रे -दि० । 2. पैजनी ओढ़नी है-दि० ।

जो आनंद कौतुकवती कछूक लज्यावंत।
सुदेव गधर्वी वधू रत नव वर्ष पयन्त ॥ 21 ॥

देव गंधर्वी।

वृषभान नदनी को बृंदावन खोरि मिलि खेलन लै आई बरसाने की कुमारिका।
मुख को उज्यारो चार्‌यो ओर चितै सकुचति चंद जानि चितवै चकोरी सहचारिका।
भू पर अनूप रूप देव ब्रजदेवी देखिबे को बन देवता भई दिवाभिसारिका।
कोकिल कलापी कुल बोलत उमाहे चित चाहे चंचरीक औ सराहै सुक सारिका ॥ 22 ॥
आवौ ओट रावटी झरोखा झांकि देखौ देव देखिबे को दाउं फिर दूजे धाम नाहिने।
लहलहे अंग रंग महल के आंगन में ठाढ़ी वह बाल[1] लाल पगन उपाहने।
लोने मुख लचनि[2] नचनि नैन कोननि की उरति न और ठौर सुरति सराहने।
बाम कर बार हार अंचर सम्हारै करै कैयो छंद कंदुक उछारै कर दाहिने ॥ 23 ॥

1. वह ठाढ़ी बाल-दि । 2. लचनि-दि० ।

23

गंधर्व मानुषी यथा। जो लज्जा अनुराग रंग रंगी सुभाव प्रसन्न।
सु गंधर्व मानुषी बय आठ बीस संपन्न ॥ 24 ॥

पंकरुह नैनी संकेत पर धाम बैठी ब्रजबाम अभिराम रुचि रोपिका। ?
तिनमें अनूप रूप रासि मद्ध राधा मानौ घेरे सरदिन्दु थल थोपिका। ?
उमड़ी रसालै वे बिसालै ताल तानावलि रंभादिक दम्भ अवलेप अवलोपिका।
बाढ्यो रंग राग देव बरस्यो सुहागमई भागमई भूमि औ सुहागमई गोपिका ॥ 25 ॥

पीछे परबीनै बीनै संग की सहेली आगे भार डर भूषन डगर डारै छोरि छोरि।
मोरि मुख मोरनि त्यों चौंकति चकोरनि त्यों भौंरन की ओर भीरु[1] देखै मुख[2] मोरि मोरि।
एक कर आली कर ऊपर ही धरे हरे हरे पग धरै देव चलै चित चोरि चोरि।
दूजे हाथ साथ लै सुनावति बचन जाति हंसनि चुनावति मुकुतमाल तोरि तोरि ॥ 26 ॥

1. उर भरि:दि०। 2. देखै नख-दि०।

एहि विधि काइक पांच विधि कहत नाइका भेद।
अब बरनत वाचिक वधू जाहि बखानत वेद ॥ 27 ॥

अथ वाचिक भेद कहि मानस कायक कहे बरनतु वाचिक भेद।
जे प्रसिद्ध साहित्य प्रति सुनत हरत हिय खेद ॥ 28 ॥

कहौ स्वकीया परकिया अरु सामान्या नारि।
तीनि भांति की नाइका वाचिक भेद विचारि ॥ 29 ॥

स्वकिया पति रति सों त्रिविध मुग्धा मध्या प्रौढ़।
द्विविधि परकीया सु उपपति रति ऊढ़ा अनूढ़ ॥ 30 ॥

सामान्या सम जगत मैं धनरत सो परनारि।
एक सु इहि विधि तीनियों तैंतालीस निहारि ॥ 31 ॥

अथ स्वकीयादि के विसेष विभिन्न भेद।

बालापन के अंत जोवन अंकुर तें प्रथम।
कन्या मूरतिवंत देवी बरनत देव कवि ॥ 32 ॥

ताहि उवत वयसंधि विविध समुग्धा नाम।
नवला अरु नवजोवना नवल अनंगा बाम ॥ 33 ॥

रति सलज्ज तिहि सुरति अरु सुरतांता कछु मानि।
सूछम सखी उराहनो मुग्धा दस विधि जानि ॥ 34 ॥

त्रिय जोवन आरूढ़ प्रगट काम प्रगलभ वचन।
सुरत विचित्रन गूढ़ सुरतवती सुरतांतवति ॥ 35 ॥

मान समै सो धीर अरु अधीर धीराधीर।
अरु उराहनो भेद दस मध्या गुन गंभीर ॥ 36 ॥

लब्धापति वर वाम रतिकोविद वसवल्लभा ।
सविभ्रमा दस अरु नाम सुरतादिक अरु हावय भा ॥ 37 ॥

मुग्धा मध्य प्रोढ़यत स्वकीया तीन सरूप ।
तीन्योऊ दस दस समै तीस भेद अनुरूप ॥ 38 ॥

इति स्वकीया के भेद भेदांतर । अथ परकीया भेद ।

कहत परकीया भेद द्वै ऊढ़ा और अनूढ़ ।
अनूढ़ अनब्याही तरुनि ऊढ़ा गूढ़ अगूढ़ ॥ 39 ॥

उपपति रति ऊढ़ा गुपत गुप्ता करति छिपाइ ।
चतुर विदग्धा कर्म वच लक्षिता पर बिलखाइ ॥ 40 ॥

कुलटा रति संतोष नहिं मुदिता रति आनंद ।
चित चिंता संकेत हित अनुसयना दुख दंद ॥ 41 ॥

सुरतवती सुरतांतवति मानिनि प्रेम अधीन ।
बारह विधि कहि परकिया उपपति रति कुलहीन ॥ 42 ॥

एक वेस्या जगत सम सामान्या तिहि नाम ।
धन चाहै जिहि निधन नर कुल गुन रूपनि काम ॥43॥

तीसरु द्वादस एक क्रम तीनों तैंतालीस ।
आठ आठ विधि अवस्था त्रिसत चार चालीस ॥ 44 ॥

इति श्री महाराज कुमार श्री जयसिंह विनोद देवदत्त विरचिते मानस कायिक वाचिक भेद नाइका विशेष भेद लक्षन कथने तृतीय विनोदः ।

अथ सुकीयादि वाचिक भेद देवी कन्या यथा ।

कालिह ही सुंदर सीफल द्वै उमगैंगे इहां दुति दूनी उवैगी ।
देव तिन्हैं[1] उर लाइबे को नवदूलह के चित चोप चुवैगी[2] ।
खेलै न हो इनसों बलिहारी तिहारियैं हौंसनदारी मुवैगी ।
कंचन की छिति सी छतियां यह छोहरी छार भरीए फुवैगी ॥ 1 ॥

1. तिहैं-दि० । 2 चुनैगी-दि० ।

अथ मुग्धा वयः संधि ।

अज्ञात वय ग्यात जोवना वाम ।
नऊढ़ा अरु विश्रब्धा सो वेई नव मत वाम ॥ 2 ॥

जानति नाहिं अहे इन हेलिन खेलत में के मोतन तूम्यो ।
छाती कछू उभराती सी आवत पाइन भारी लगै कछु भूम्यो ।
कोइन मीन मनौ उछरै सुनि यों जननी मन आनंद भूम्यो ।
बाल को ओट बुलाइ हरे हिय लाइ लई हंसिकै मुख चूम्यो ॥ 3 ॥

25

वय: संधि यथा।

बैठी वृषभान क्वांरि खेलत ही पौर द्वार आए नंदक्वांर कर गहे फूल दौना है।
वेई वेई दूनो देव सूनो ब्रज हेरि चखचूनो सो चुनत दिन[1] दूनो हित होना है।
चंचल अचल रही अंचल रदन दाबि चंचल न अंचल दृगंचल चलोना है।
टोना सो करत दृग कोना दुहू ओर इत[2] सूल्यो लखि लोना उत भूल्यो ना खिलोना है ॥ 4 ॥

1. ०-दि० । 2. ०-दि० ।

द्वार की पौर तें दौरति दूरि दुराय भुजानि दुरै दुरि बैठें।
भूलि के बातन ही हहराय हंसै बहराय लरै लुरि बैठें।
देव कहा कहौं देखत ही बनै ढौरी लगाइ ढरै ढरि बैठें।
खोरि में खेलत खोरि सी लागति भौंहें मरोरै मुरै मुरि बैठै ॥ 5 ॥

नवयौवना।

लोग जे लाड़ लड़ावत हैं तिन लोगनि भौंहनि भाउ[1] अमेठ्यो।
त्यों सतरे अंखियान में ह्वै सखियानहु दंत दै ओठनि अैठ्यो।
बंधुन की बतियान मैं ह्वै कवि देव कछू छतिया डर पैठ्यो।
पाइन को चितचाइन को बल लीलत लोग अथाइन बैठ्यो ॥ 6 ॥

1. माड-दि०

नवल अनंगा।

जेठी बड़ीन मैं बैठी बहू उत पीठि दिये पिय डीठि सकोचन।
दर्पन की मुंदरी दृग दै पिय को प्रतिबिंब लखै दुखमोचन।
सो परछांह निहारत नाह चढ़ी चित चाह गड़ी गुरु सोचन।
देव सु भौंहन भै उपजाइ भजाइ लै जाइ लजाइ कै लोचन ॥ 7 ॥

सलज्जरति।

दूलह संग नई दुलही जु हिये उलही सु लही सुख साहै।
देव लगा हिय के हिलगा मुख माड़त रारि न छांड़ति बाहै।
भौंह उचै अंखियां सकुचै सुख को समुचो न मुचो चित चाहै।
सांसन मैं सिसकी रिस की धुनि हारति नाहिं निहारति नाहै ॥ 8 ॥

मुग्धा सुरति।

बैरिनि मेरी कहा गई वै कर छांड़ि उन्है[1] किन देखन तू दै।
यों कहि के उझकी परजंक तें पूरि रही दृग वारि की बूंदै।
जोरन देति नहीं मुख सों मुख छोरन देति न नीवी की फूंदै।
देव सकोचन सोचन सो मृगलोचनि लाल के लोचन मूंदै ॥ 9 ॥

1. उहै-दि०

मुग्धा सुरतांत ।

धाइ धरा बसी ही के कहे हो बिठाइ गई इनकी रुचि रेखौ।
ते निरदई निरदई कर दै मुंह ओट भई चितचोरनि पेखौ।
आप गई बस कंत बिसासी के बीस बिसै बिसवास बिसेखौ।
काहे कि या सखिया दुखदायिनि हौं न इन्हें अंखियां भरि देखौ ॥ 10 ॥

मुग्धा को लघु मान ।

धरे मुख पै मुख अंक पे अंक[1] परे परजंक मैं बालम बाल।
उसास लै ऊंची कियो छल छैल सराही तिया कोऊ रूप रसाल।
बधू[?] सिर लौटि लिये भरि नैन करौट न लेन दियो ततकाल।
वेई[2] कुच कंचन सैल भये वही देव नदी भई मोती की माल ॥ 11 ॥

1. अंग-दि० । 2. वई-दि० ।

मुग्धा की सिक्षा ।

दोऊ कर दाबि गोरे गोल ए[1] कपोल कोरे करति निहोरे पीको नीको[2] अभिलाखु री।
मेरी चंदमुखी तेरी चूमति चिबुक चेरी चितै ब्रजचंद रूप चख भरि चाखु री।
देव सुखदानि सनमुख मुख करि नैंकु रुचि के रचन[3] चारु सुवचन भाखु री।
निपट लजीली गरबीली ए रंगीली अनखीली खिन आंखिन अनोखी इत राखु री ॥ 12 ॥

1. ०.दि० । 2. ०-दि० । 3. रवन-दि० ।

मुग्धा को उराहनो ।

ह्यां जु कछू करतूत तिहारी निहारनहारी हंसै रस पागी।
नेको सवार अवार भए सब खोलि किवार हंसैंगी अभागी।
देव जू सोवन देहु घरीक सरीकिनि वे जु खरी निसि जागी।
देखति हौं दुखिया दुरि द्वार दु द्वै जनी दौरि दरीचिन लागी ॥ 13 ॥

इति दस बिधि मुग्ध । अथ मध्या भेद तत्रादौ अरुढ़ जोवना ।

अरुन बरन महा कोमल कर चरन तरुन सुरंग अंग अंग अमलनि को।
सांझ को सरद ससि अंबर मैं अधखुल्यो बारियत[1] पून्यो की प्रभा झलमलनि को।
सहज सुगंध सो मदंध मधुकर कहौ को गनै सुगंध और सौंधे समलनि को।
जोतिन को जूह देव दीपति दुरूह देखौ हंसत समूह जात[2] फूले कमलनि को ॥ 14 ॥

1. बारिजत-दि० । 2. जाल-दि० ।

प्रगट काम ।

लाल चलि देखिबे को लालच लग्योई देव लोचननि लागी लोक लाज लहराति है।
दौरे द्वार देहरी अटानि घर काज मिसु घरिया सी घरनघरीक ठहराति है।
रति को सकोच रतियाहू न मिलन देतु छोह मूरछा सी छतिया मैं छहराति है।
सेज पै सुजान सो नहीन न करति मन माह तो भुजान भरिबे को भहराति है ॥ 15 ॥

27

प्रगलभवचना।

सुनिहै उपहासिनी हैं जनी वै पगवैजनी बैरिनि रागती है।
न छुवो कछु अंग छिमा करो छैल सकोच की गैल समागती है।
घुंघरून घराव सी मौन धरै बिछियान की जीभौ न लागती है।
बिनती सुनौ देव जू बोलौ हरे दुखिया वै हहा हरि जागती है॥ 16॥

विचित्रसुरता।

ओट पट घूंघट तें हंसनि मसाल लिये निकसी रसाल भूमि भाल तानि त्रिकुटी।
तालधारी नूपुर अनूप रव बोलै ताल रसना रसाल चुरी चाल चारु चिकुटी।
मंजीर उदार सुरसार मंजु ससकनि कंठ धुनि डंज नंदीवरनु कै सृकुटी।
सुरत नवीन सुवचन निरखन लागी अंखिया नचन लागी भृकुटी॥ 17॥

मध्या सुरत।

लंक गहि लीनी परजंक मैं मयंकमुखी सुंदरि ससंक अंक अंकनि धंसति[1] सी।
ओठनि अमेठति कंटीली भौंह अैंठति मरोरति सुनासा तन तोरति त्रसति सी।
सौंहें सतराति इतराति बतराति औ भुलाति अकुलाति उर[2] अंतर बसति सी।
आंसू दृग दोलत उसास हिय खोलत सु बोलति रिसाति सी कपोलन हंसति सी॥ 18॥

1. धरति-दि०। 2. डरु-दि०।

मध्या[1] सुरतांत।

सेज ते धरनि पर पांय की धरनि रदरेखैं अधरनि सधरनि सुरहुरी लेत।
लूट सी करति कलहंस जुग देव कहैं टूट मुतिसरी छिति छूटि ढुरहुरी लेत।
बार हार बसन निहारन न पावै मोर भौंर चकोरन कर भार भुरहुरी लेत।
नैननि नटेरि टेरि[2] चेरिन को फीको मुख पी को मुख हेरि फेरि फेरि[3] फुरहुरी लेत॥ 19॥

1. मुग्धा-दि०। सुजान० 4 : 52 तथा सुख० 472 पर यह छंद मध्या सुरतांत का उदाहरण है।
2. नैन निज टेरि टेरि-दि०। 3. ०-दि०।

अथ मध्या मान।

वक्रोकति पति सों कहै मध्या धीरा नारि।
मध्य मध्य उराहनो वचन अधीरा गारि॥ 20॥

धीरा यथा।

हित की हितू री क्यों न तू री समुझावै आनि सुख दुख मुख सुखदानि को निहारनो।
लपने कहां लौं बालपने की बिकल बातें अपने जनहिं सपनेहू न बिसारनो।
देव जू दरस बिनु तरसि मर्यो हो पग परसि जियैगो मनु बैरी अनमारनो।
पतिव्रत व्रती ये उपासी प्यासी अंखियनि प्रात उठि प्रीतम पियायो रूप पारनो॥ 21॥

28

मध्या धीरा।

भोरही आए मया करि मो घर बैठिये दर्पन देति मंगाए।
ओठनि अंजन लीक लसै अति देव दुहूं पल पीक लगाए।
आनन में अगरे बगरे गुल बाल गरे रंगि रैनि रमाए।
कोइन लोइन लाल लखै जिन्ह को इन लोइन ल्याए लगाए ॥ 22 ॥

मध्या धीराधीरा।

तन मन ओट पट कपट घूंघट खोलि उर सो लगाए इतने मैं अरसात हौ।
थाकी अपनाइ अपने से हौं उपाय करि भए अपने न सपने हू न थिरात हौ।
कोधौं कहि गैल छैल छतिया छपाई जाके बिरह बौराने देव बोलत न बात हौ।
प्यारे परजंकहू मैं मो मुख मयंकहू मैं सांसैं लै ससंक अंकहू मैं अकुलात[1] हौ ॥ 23 ॥

1. अलसात-दि०

इति दस विधि मध्या। अथ प्रौढ़ा लब्धा यथा।

देव सुख सदन बिराजत बदन तामैं खेलत मदन फाग राच्यो रति राग रंग।
बार बधू बेसरि नचावै तरिवन नटति लंक तमासगीर भाल भ्रू बिभाव रंग।
भृकुटी सलिल चारु चितवनि सील भरी मानौ सहचरी छरी लीन्हे अनुराग रंग।
अधर सदन दुति बसन अमंद मंद सुंदरी हंसनि सनि रही है सुहाग रंग ॥ 24 ॥

रतिकोविदा।

सांसै लेति हंसति रिसाति मृदु बोलति बलैया लेति लाज उर आनि परि गई है।
घूंघट उघारि मुख देखन न देति[1] रदरेखनि कनेखनि की कानि परि गई है।
देव मुखदानि सुखदाइनि को संग देखि सौति दुखदाइन के हानि परि गई है।
तानि पट दोऊ दुहुं पानि परबीन रूप पानिप निहारिवे की बानि परि गई है ॥ 25 ॥

1. देखन देति-दि०।

वसबल्लभा।

पीछे पीछे डोलत है सामुहे ह्वै बोलत है खोलत है घूंघट सु प्रानन पुखौत है।
पग पग मग मैं[1] बिछाइ प्रेमपाउड़े से धोखेहू न भूलै देखादेखी मैं धुखौत है।
देव सखियान की सिराइ अंखियान सब निसदिन[2] देखि अनदेखिन दुखोत है।
इन्दुबदनी के सरदिन्दु से बदन स्रमबिंदुनि गुबिंद अरबिंदनि सुखौत है ॥ 26 ॥

1. पग पग मैं-दि०। 2. निसदुनि-दि०।

सविभ्रमा यथा ।

पीके[1] जिय जी करति प्रीति उपजी करति नाहीं के न जी करति ही में हुलसी करति ।
त्योरी तिरछी करति नासा मोरि छी करति छाती छुवे छी करति सांसे उससी करति ।
देव श्रम सी करति कर वरसी करति यों ही अरसी करति सोंही अरसी करति ।
सी करति ओठनि बसी करति आंखिन रिसोहीं सों हंसी करति भौंहनि हंसी करति ।। 27 ।।

1. पियके-दि० ।

अथ प्रौढ़ा सुरत ।

कवि देव बरने बरनि पूर्यो परबंध रव सरस सुगंध रव रसना सच्यो है ।
मृदु मानि मनितनि अलिगान कमलनि निरदंभ परिरंभ उरवासी हू रच्यो है ।
घूंघट वितान ओट सुघट उघट पटु लटकन मोती नट चटुल नच्यो है ।
विधुमंडल पुलनि भानु मंडलनि मध्य तारा मंडल विलास रास मंडल रच्यो है ।। 28 ।।

अथ प्रौढ़ा सुरतान्त ।

तीनि तट तटिनी निकट बनराजी नंद विकट तरंग सुर गंध रवाए हैं ।
अवर झकत उझकत विवि चंद्रचूड़ डगन झुंड मुंड छवि सों छवाए हैं ।
बिंबफूल फरकि दरकि दल दार्‌यो सु खंजन भमर मन रंजन सवाए हैं ।
कवि गुरु बुध भौम मंद ही लचाए जो[1] देव रवि सोम तम तोमनि दबाए हैं ।। 29 ।।

1. जो न-दि० ।

प्रौढ़ा धीरा यथा ।

दूरि ही ते आदर उदारि दृग बादर सो उमड्यो उरोज गिरि बोरिबे को बूंद झर ।
साधी अध उरध उसासन की आंधी सो गिरा ही गहि बांधी कोप कपट कपाट धर ।
भृकुटी कुटिल नटी नटि नटि नटी हटी मंद बिहंसनि रटी बलैन कमल कर ।
सांचेहू अचल चल्यो हल्यो न इतै पर अधर की .धर निधि सोखी रज धरनिधर ।। 30 ।।

अधीरा प्रौढ़ा ।

खोरि खोरि राख्यो जोरि रस राख्यो सो निचोरि चोरि चाख्यो मधु माख्यो सखियन को । ?
सोखै मुख भूखनि सरोखै रूख रूखनि क्यों नोखे तनु पेखि मन पोखै पखियन को ।
निपट कपट प्रेम लपटी लपट जीभ उच्चरति चाट सो उचाट सखियन को ।
देव सुख मानि सुखदानि मुख देखै दुख मानिबो अयान दुखियान अंखियन को ।। 31 ।।

प्रौढ़ा धीराधीरा ।

चाचरि नाचे निसाचर के गृह सोई तिहारे सनेह सनैगी ।
लोइन के रंग लाल गुलाल लखे रुख केसर सी उफनैगी ।
पूसहिं तें हरि फाग करी तिय ऐसी न जो हिम माह गनैगी ।
लागी लला नवला सी हिये सु लचाए तुम्हैं गुलचाए बनैगी ।। 32 ।।

30

इति श्रृंगारपात्र सुद्ध सुकीया के तीस भेद । सुकीया को स्वरूप ।

डोलति हरेई मृदु बोलति खरेनि दृग खिरकी कपाट खोलत त्रसति है । ?
सकुच सुभाइ पतिपूजन उपाय क्योंहूं छूटत न पांइ कहूं धाइनि धंसति है ।
आप अरपन करि दरपन ह्वै रही सुघरपन करि देव काहि तू हंसति है ।
रूप गुन जोवन चटीयो चरनन याकी देह मोहरे मैं हरि मूरति बसति है ॥ 33 ॥

सहज स्वरूप ।

जरी पट घूंघट बितान बंदी तोरन चंदोवा सीसफूल सीस कै लसत उदीप है ।
मांग की सुहाग पौरि आसन जराऊ खौरि तरिवन देव दोऊ सेवक समीप है ।
भौंह तट नील लाज सागर सलिल सील लोचन कमल नासा मुकतन सीप है ।
सफरी हंसनि पर डारी गुन डोरी राजै रोरी को तिलक मुख मंडल महीप है ॥ 34 ॥

इति श्रीमन्महाराज कुमार श्री जयसिंह विनोद देवदत्त विरचिते मुख्य श्रृंगार पात्र सुकीया भेद भेदान्तर बर्ननोनाम चतुर्थ विनोदः ।

सुकीया के दसादिक भेदांतर ।

दसा अवस्था हाव दस यद्यपि सकल त्रियानि ।
तदपि सुकवि क्रम तें कहत मुग्ध मध्य प्रौढ़ानि ॥ 1 ॥
मुग्ध त्रिया की दस दसा कही पूर्व अनुराग ।
दसावस्था मध्यान की बरनत सुनौ सभाग ॥ 2 ॥
स्वाधीना वासवकती उत्का खंडित वार ।
कलहंतरि विप्रालबध गतपति कृत अभिसार ॥ 3 ॥
आठ अवस्था ए सुकवि बरनत मत प्राचीन ।
वासकसज्जा सेज[1] मैं साजै वार प्रवीन ॥ 4 ॥

1. रोज-दि० ।

पिय आगम बीतत समै उतकंठित चित चीत ।
खंडित वार सु खंडिता प्रातहि आवत मीत ॥ 5 ॥
कलहंतरिता कलह करि पति सो फिरि पछिताइ ।
विप्रलब्ध तिहि ना मिलै पिय संकेत बताइ ॥ 6 ॥
अभिसारक प्रिय गृह चलै समय समान सरूप ।
प्रोषित तिय परदेस पति दै गयो अवधि अनूप ॥ 7 ॥

अथ स्वाधीनपतिका ।

लोचन लचाइ लचि लाजनि चलति त्योंही लाल लचे जात चित लागी ललचई[1] है ।
देव दृग दोऊ भरि हौंसनि हियोऊ भरि भुज[2] भरि भाग अनुराग भरि लई है ।
सोहैं सुखदानि तो सुखद मुख देखि पल आध न अघात दिखसाध नित नई[3] है ।
घनि घनि रूप गुन साधनि अनूप धन या गृहधनी को निधनी को धनु भई है ॥ 8 ॥

1. ललचाई-दि० । 2. होसरि हियो भरि भुजानि-दि० । 3. मई-दि० ।

31

वासकसज्जा ।

खोलि कै कपाट दीने अंतर कपाट रंगरावटी मैं[1] ओट ह्‌वै सुगंध सुवटत[2] ही ।
पोंछति कपोलनि अंगोछति उरोजनि तिलोंछति सुदेस केस चोवा चुवटति ही[3] ।
मेंहदी रचाइ कर पाउन महाउर दै देखति कनेखनि सखीन खुवटत ही[4] ।
केली सुख संग की उमंगनि अकेली देव दिवस गमावै अंग अंग उबटत ही ।। 9 ।।

1. पै-दि० । 2. सुवट-दि० । 3. दूसरे, तीसरे तथा चौथे चरणों का तुकान्त 'है'-दि । 3 चरणों का क्रम चौथा-तीसरा-दि० । 4. खटवति है-दि० ।

उत्का यथा ।

सेज को साज सबै सजि सुंदरि बैठी समागम पी को सुनैया ।
बीतो समै अबहीं ते[1] भयो हरि मीतो[2] कहूं चितचीतो चुनैया ।
सर्वस देउंगी देव सो जो कोई आइ संदेसो कहै निपुनैया ।
जालनि जालनि यों कहै बाल परी नव जाल ज्यों लालमुनैया ।। 10 ।।

1. अबही तो-दि० । 2. मी तो-दि० ।

खंडिता ।

लाल लाल लोइन भलो इन[1] दरस दीनो कोइन छिपावै लागी कोइन कलोलती ।
सेव किनि हमसों[2] करावै सेवकिनि जानि देव किनि निकसि कृपा कै नेक बोलती ।
राग रंग रंगी अनुराग जगमगी संग जगी सब रैनि डगमगी डग डोलती ।
ललकै छलक पट छलकै[3] झलक पट बलकै पलक पट मूंदि मूंदि खोलती ।। 11 ।।

1. मलोइन-दि० । 2. हमारी-दि० । 3. छलक-दि० ।

कलहंतरिता ।

प्रानप्यारे पति को करत[1] अपमान देव आनत[2] न प्रान अब आन तन खोत क्यों ।
रोगी ज्यों सबात बात कहत संभारत न इत उत पात उतपातक की ओत क्यों ।
कोसत है आप अपसोस करै आप हरि रोस करि तब तो रिसाति अब रोति क्यों ।
पूछै किन कोई इन्हैं पीछे पछताति कहा सूर छत जैसे छित मूरछित[3] होत क्यों ।। 12 ।।

1. करति-दि० । 2. जानत-दि० । 3. मूरछत-दि० ।

विप्रलब्धा ।

सुख दै बुलाइ बन सूनो दुख दूनो दिखाइ कै वार उससि रोस स्वास सरकनि ।
औचक उचकि चित चकित चितौत चहूं मुकुतहरानि थहरानि कुच थरकनि ।
रूप भरे भारे वे[1] अनूप अनियारे दृगकोरनि उरारे कजरारे[2] बूंद ढरकनि ।
देव अरुनई अरु नई रिस की छवि सुधामधुर अधर सुधामधुर फरकनि ।। 13 ।।

1. भोरे वे-दि० । 2. ०-दि० ।

32

अभिसारिका ।

भारी निसि भैंरो किलकारी देत दिस दिस कारी घटा घिसि घिसि लागती नजीक सी ।
गनी न धनी के ध्यान बनी जोवती पैं न्यान[1] घनी बनी बेलिनु मगनि अब नीक सी ।
झिल्लिनु की अैल गैल गैलनि चुरैलगन मोकुल सुरनि केकी कोकिल की कीक सी ।
देव मूंदि कानन कान न आन न सुनैं आनन उजारे सों लिखति आई लीक सी ।।?14 ।।

1. 'ध्यान' भी पढ़ा जा सकता है-दि० ।

दिवसाभिसारिका ।

चंडकर मंडल ते ग्रीषम प्रचंड घाम घुमड्यो फिरति भूमि मंडल अखंड धार ।
भौन तें बगीचा देव लह्लही डारनि ह्‍्वैं दुलही सिधारी उलही ज्यों लह्लही डार ।
नूतन महल नूत पल्लवनि छ्वै छ्वै स्वेदलवनि सुखावत पवन उपवन[1] सार ।
तनक तनक मनि कनक नूपुर पाइ आइ गई झनक मनकनि झनकवार ।। 15 ।।

1. ०-दि० ।

प्रोषितपतिका ।

पावस प्रथम पिय आवै की अवधि सो जो आवत ही आवै[1] तो बोलाऊं अति आदरनि ।
नाहीं तो न कीच[2] होन देरी बीच सूखे सर ग्रीषमहि भाखु खाली राख खल खादरनि ।
बीजरी बरजि कहु मेहै न गरजु इन गाज मारे मोर मुख मोरि री निरादरनि ।
कंठ रोकि कोकिलनि चंचु[3] नोचि चातिकनि दूर करु दादुर बिदा करि री बादरनि ।। 16 ।।

1. जो आवै-दि० । 2. कीव-दि० । 3. चुंच-दि० ।

प्रवत्स्यत्पतिका ।

फूल से दुकूलनि मैं देह की दमक देव कासार कुरंगसार केसर कनक सी ।
जीव की न आस कहौ कैसी भूष प्यास आंसू सूखत उसास बेनी आनन अनक सी ।
सोई दुख दूखि बिथा बिरह बिरूखि[1] सूखि मंजरी सी मंजि तन ह्‍्वै गई तनक सी ।
प्रात परदेस को चलैंगे सुखदायक सुभाइ काहू आइ कही भाइक भनक सी ।। 17 ।।

1. विरमि-दि० ।

आगमिष्यपतिका ।

धाई खोरि खोरि तें बधाई पिय आगम की कोरि कोरि भांति रस भावनि भरति है।
मोरि मोरि बदन निहारति बिहार भूमि घोरि घोरि आनंद घरी सी उघरति है ।
देव कर जोरि जोरि बंदत मुनिन लघु[1] लोगनि के लोरि लोरि पाइन परति है ।
तोरि तोरि माल पूरै मोतिन की चौंकहि[2] निछावरि को छोरि छोरि भूषन धरति है ।। 18 ।।

1. मुनि ल-दि० । 2. चौंके-दि० ।

आगमपतिका।

औधि के द्यौस अचानक आए पै आउ ज्यों आवत ही नियरानी।[1]
देव दोऊ भुज लै अंखियां भरि राखि हियो भरि कै तिय रानी।
स्याम घन आगम ज्यों बसुधा हरखी बरखी परखी पियरानी।?
छीजी सी भीजी रंगी उमगी सी तपी औ कंपी ससकी सियरानी॥ 19॥

1. निहरानी-दि०।

प्रीतम चले सुनि चली न फिरि सांस आगे आंसू चलि आए ते[1] छिपाए छलछंद ही।
सिसकी भरति रही मिसकी न बात बिस की सी बेलि बाढ़ी उत पति हिय कंद ही।
देव लखि लौटि पगु दीनो पिय आइवे को बालहू की[2] स्वास मैं हुलास ह्वै अनंद ही।
निघट्यो न दुख उघट्यो[3] न सुख घूंघट में ससक्यो सकान्यो मुसक्यान्यो[4] मुख मंद ही॥20॥

1. आए तो-दि०। 2. त्रास ही की-दि०। 3. उघर्‌यो-दि०। 4 ०-दि०।

इति मध्या की दसावस्था। अथ प्रौढ़ा के दस हाव।

लीला और विलास कहि अरु विछित्त विलोक।
विभ्रम किलकिंचित कहौ मोटाइत बिब्बोक॥ 21॥
कहौ कुट्टमित औ विहृत ललित ललित दस हाव।
तिय को पिय संयोग मैं प्रगट चेष्टा भाव॥ 22॥

क्रम तें लक्षन।

कपट भेष भाषानुकरि लीला मैं रस हास।
सरस भाव तन मन वचन रुचि कौ रचन विलास॥ 23॥
लघु मंडन विछित्त मैं मन अभिमान विसेष।
विभ्रम सो जु प्रमाद तें उलटे भूषन भेष॥ 24॥
किलकिंचित इक बार भय मुद मद रस रिस मान।
मिलै कपट मोट्टाइत मनु वचन आन तन आन॥ 25॥
मन मैं सुख संकट कपट प्रगट कूटमित हाव।
पिय सदोष बिब्बोक बहु दृग भौंहनि के भाव॥ 26॥
अपनी गौं मिस लाज छल विहित आन तन आन।
ललित सरस रचना ललित बरतन सुकवि सुजान॥ 27॥

अथ लीला हाव।

रच्यो कच मोर सु मोर पखा धरि काक पखा मुख राखि अराल।
धरी मुरली अधराधर लै मुरली सुरलीन ह्वै देव रसाल।
पटंबर काछनी पीत पटा धरि बालम बेषु बनावति बाल।
उरोजनि खोज निबारिबे को उर पैन्ही सरोजनि की मृदु माल॥ 28॥

34

अथ विलास हाव।

देव सुवरन गुन बीध्यो है मधुर महा अधर अखारे के सधर सुखढार में।
मंद मुसक्यानि पट् तानि पट्तानि[1] पट नथ को सुनथ को निरत निरधार में।
घूंघट वितान तान[2] तोरत तर्योननि त्यों[3] झलकै कपोल बेंदी ललके लिलार में।
मोती लटकन को नवल नट नाचे सदा नैन नटवान की[4] चट्ल चटसार में॥ 29॥

1. ०-दि०। 2. तानि-दि०। 3. तौ-दि०। 4. के-दि०।

अथ विछित्त हाव।

भूषन भेष जराऊ जरी धरे छोरि सुगंध तमोर बिसारेई।
पैन्हे फिरै पियरो पट पीको सु नीको लगै मुख ही के उज्यारेई।
बंदन बेनी लिलार लसै चुरी चारि सुहाग सों रारि पसारेई।
लाज लगै अरविन्दन देव रची मिहंदी करविंद निहारेई॥ 30॥

विभ्रम हाव।

लाल जरी लहंगा कछ[1] काछनी झूमक सारी कसी कर तैसी।
माथे मिही दुपटा फहरात छुटी अलकैं छलकैं छवि कैसी।
छाती उंची बिन कंचुकी अंचर सूधी रहै न अहे किन ऐसी।
देवजू बात सबै बनि आए की कापै बनै बनि आई तू जैसी॥ 31॥

1. कछी-दि०।

अथ किलकिंचित हाव।

लागत ही पिय के हिय सों हिय मोहि रही त्रिय काम कलानि में।
देव संजोग जगे उमगे उर एकहि बार सबै सुखदानि में।
ही में हुलास गरे सिसकी अधरानि[1] हंसी अंसुवा अंखियानि में।
स्वास में त्रास[2] बिलास में रोस भौहनि भै अनभै[3] कुलकानि में॥ 32॥

1. अधराति-दि०। 2. स्वास-दि। 3. अरुभै-दि०।

अथ मोटाइत हाव।

रैनि मैं पुरैनि लौं कमलमुख मूंदे रहै देव दिनकर दुति देखै दौरि दिन को।
बाम बांह नाह के समीप ही उछाह भरी छांह भई डोलती न छ्वावै छांह छिन को।
बैर किधौ प्रीति यह को जानै अनोखी रीति अनख अनीति के सुनैयै किन किन को।
औगुननि उरझे हिए न सुरझावै कौन इनको बुझावै समुझावै कौन इनको॥ 33॥

35

अथ कुट्टमित हाव ।

कंचुकी संकोच कुच कुंचित कै सोच तजि अरुन निचोल[1] तजि सूधी समुहाति है ।
माररन भू मैं[2] वर सार गहे घूमै देव रसना गुननि दंत दाबे बिहंसाति है ।
बिमुख न होत[3] ज्यों दुखति सुख पावत त्यों मनमुख मुख पै घनेई घाइ खाति है ।
अंग अंग पति के बिपति रंग संगर मैं लोहू हेरि सूर ज्यों बिसेष बिरुझाति है ॥ 34 ॥

1. निबोल-दि० । 2. मारत भू मैं-दि० । 3. बिमुखनि होति-दि० ।

बिब्बोक हाव ।

प्रीतम मीत अमीतन सो मिलि प्रातहि आए हैं प्रीति सुभावक ।
नींद न जात उनींदे से लोइन कोइन से निकसै जनु जावक ।
कोपतई चितई पिय त्यों तिय नैन नचाइ तचाई ज्यों पावक ।
देव मनोज मनो जु चलायो चितौन मैं सोन सरोज को[1] चावक ॥ 35 ॥

1. में-दि० ।

विहृत हाव ।

देखि सखीन न खीन भयो मुख देव गुपाल गये अनुरागे ।
त्यों उत घूंघट भीन पटा मैं झके[1] उझके दृग प्रेम सो पागे ।
पंकज से कर जाइ छिपाई रही छिपि लोचन मूंदि सभागे ।
काम दलाल चले चित लै नंदलाल चले मद लालच लागे ॥ 36 ॥

1. झुके-दि० ।

ललित हाव ।

लागत समीर लंक लहकै समूल अंग[1] फूल से दुकूलनि सुगंध बिथुर्यो परै ।
इन्दु सो बदन मंद हासी सुधाविन्दु अरविंद ज्यों मुदित मकरंदनि मुर्यो परै[2] ।
ललित लिलार स्रम झलक अलक भार मग में धरत पग जावक घुर्यो परै ।
देव मनि नूपुर पदमपद दू[3] पर ह्वै भू पर अनूप रंगरूप निचुर्यो परै ॥ 37 ॥

1. अंक-दि० । 2. ज्यों मुदित मकरंदनि भुर्यो परै-दि० । 3. हू-दि० ।

इति प्रौढ़ा के दस हाव । इति मुख्य शृंगार यत्र स्वकीया कौ पुर्वानुराग प्रथम अंग दस दसा अवस्था हाव वर्ननं । अथ स्वकीया विषय गौन शृंगार भावप्रकासकरनादि निरूपन ।

पूर्वनुराग वियोग तें होत सिगार संयोग ।
पीछे मान प्रवास अरु करुनातम दुख भोग ॥ 38 ॥

36

तातें पूर्वनुराग   रस मुख्य सिंगार संजोग।
मानादिक रस गौन है क्रोध विरह अरु भोग।। 39 ।।

प्रगटहि मान वियोग मैं रौद्र कोप प्रकास।
करुनातम रस करुनमय सकरुन विरह प्रवास।। 40 ।।

ताते मानादिक मलिन रौद्र करुन परिभोग।
साप हेतु पंचम विरह सो प्रवास के योग।। 41 ।।

अथ मान वियोग शृंगार।

गुंज गुंज उठ्यो घन[1] बरुनी निकुंज रहि गंजि कामकुंजरहि विरचि विहार में।
देव कोप केसरी कुभेस रीति बैठ्यो[2] अैंठि भृकुटी अमेठि पूंछि त्रिकुटी पहार में।
थीते चित चीते सब ग्रह खगही ते उठि उठि लोभ बीते रीते ससक हुंकार में।
मारे दृग घाइल घुमारे कर साइल हमारे जान मान महराज की सिकार में।। 42 ।।

1. घनी-दि० ।   2. तैठ्यो-दि० ।

मान अंस धीरादिकनि तहां न छूटत प्रेम।
सुद्ध मान बिन प्रेम रस है कुदान को हेम।। 43 ।।

प्रवास वियोग शृंगार।

जीवन नाथ कहा इन क्यों जन जीवत संग पयान करैगो।
ता बिनु जीव जो चाहै जियो तो जियो किन मोहू भले बिसरैगो।
औधि गए कहि कै दिन एक इहां छिन एक न पार परैगो।
देव महा दुखिया अंखियान के दुःख न मो पर देख्यो परैगो।। 44 ।।

करुणात्मक वियोग।

नख सिख भेंट भई एकै तन ताहि तजि चाहत गयो भजि कै नाग निरमोक लौं।
नीके सुख जीके सुखदाइक सुखद मुख सनमुख देखौ देव आनंद के ओक लौं।
एक बार नेक किन कहिबे को भाखौ बैन राखौ पै न मोहि सहिबे को इक सोक लौं।
मेरे प्राननाथ मेरे प्रान साथ रैहै न तौ जानत अकेले जा न पैहो परलोक लौं।। 45 ।।

अथ मानवियोग भेद।   लघु मध्यम गुरु मान अरु दुखित अन्य संभोग।
ज्येष्ठा कनिष्ठा वक्र वच गर्वित सु जथा जोग।। 46 ।।

अथ लघु मध्यम गुरु मान।

सौति चितौनि चितै दुचितै पिय रूठि रही जु हंसै हंसि बोली।
धोखे कढ़ी तिहि बानी सुने सतरानी सु सोहनि कै रिस छोली।
ता संग सोइ के आए प्रभात प्रभा तकि पाइं परेहू न डोली।
केतु कुटी भृकुटी चिकुटी नभ मालधुजा ज्यों अकाल कलोली।। 47 ।।

37

अथ गुरुमान।

मनहि मसूसि मनभावते सों रूसि सखी दासिन सों दूसि रही रंभा झुकि झंझा सी।
आरसी महल चित्रसारी सी चहल बिनु आनंद टहल देव मंद बिधि बंझा सी।
सोचै सुख मोचै सुक सारिका लचाए[1] चंचु रोचै न रुचिर बानि मानि रहै[1] अंझा सी।
सगरे सकल अंग अचल उछाह भंग ओज बिन[3] सूझति सरोज बन संझा सी।। 48।।

1. वेचाए-दि०। 2. रही-दि०। 3. ओजनि न-दि०।

अन्य संभोग दुःखिता।

सूंघन चमेली चलि कोमलै कलीन अलि कोमलै पवन उपवन ल्याओ लुरि कै।
अरुन बरन अंग तरुन सुरंग देखि कामक कुढंग संग टूक्यो ढंग हरि कै।
पायो परिमलन मलिन[1] कियो सब निसि सलिन के संग ही मलिन भई मुरि कै।
जान्यो न सुगंध वामदंध मधुकर नीच बीच ही बिदारी दारी दार्यो कली दुरि कै।। 49।।

1. मलनि-दि०।

ज्येष्ठा कनिष्ठा।

खेलत आंख मिहीचिनी खेल सु आपु हीं दाइ भई सुखदाई।
एक सी प्रीति प्रतीति दुहूं पर देव जू भूपर रीति चलाई।
मूढ़ करी छल ही छल छैल सु ढूंढ़त गैलनि गूढ़ पठाई।
सर्वसु दै दृग को लपु दै इतनौ न त्रिया छतिया सो लगाई।। 50।।

वक्रोक्तिगर्विता।

वेली नवेली अली तजि केली अकेली चमेली हियो दरिहैगो।
सर्वसु जोवन को हरि है सोई सर्वसु जोवन को हरिहैगो।
होन दे साँझ सरोवर माँझ सु दाउं कुमोदीन को परिहैगो।
देव अभै अरविंद मुदै करि पून्यो को इंदु उदै करिहैगो।। 51।।

इति श्री मन्महाराजकुमार श्री जयसिंह विनोद देवदत्त विरचिते गौन शृंगार पात्र सुकीया भेदभेदांतरे पंचम विनोदः।

अथ परकीया ऊढ़ा यथा।

या जिय को दुख कासों कहौं कहिबो को सु जीभ न डोलति डाही।
कौ लौं छिपाइये छाती के घाइन होत चवाइन की चितचाही।
मेरीये गैल लग्यो रहै लंगर जो न लखौं मरै तो पल ताही।
लाज निवाहन मोहि परी[1] यह बैरिनि लाज परै न निबाही।। 1।।

1. मो हिय री-दि०।

ऊढ़ा को उराहनो ।

रावरे रूप लला ललचानीयै[1] जानी न काहू बिकानियौ ऐसी ।
है सतहीन सताई ततो[2] तुम संगति ते उतरी उत तैसी ।
न्याउ निबेरो न हो यह नेह को देव दुरी न तुम्हें हम जैसी ।[3]
देखिबे ही को भरै सिसकी तिनके रिस की चरचा कहो कैसी ।। 2 ।।

1. ललचानि पै-दि० । 2. न तौ-दि० । 3. तुमें हमें जैसी-दि० ।

अथ प्रेमाधीन ऊढ़ा ।

घेरी घिरी घर मैं न घरीक सु कुंजनि मैं कहि काहि गनै री ।
ठाढ़ी अकेली सहेली पठाइ कै पाइ अंगूठा सो भूमि खनै री ।
ल्याउ उन्हें गहि बांह इहां लगि तौ लौं घनी तरु छांह तनै री ।
आजु तौ[1] या बन वा बनमाली मिलै बिनु आली न मोहि बनै री ।। 3 ।।

1. आस तौ-दि० ।

अथ अनूढ़ा ।

मोतिन की झालरै झमक झूमकारी सारी[1] इंदिरा मंदिर देव दुति कंदरप सी ।
जगमगी मोतिन जराऊ[2] तरिवन तीर अलक अराल मनि लपटी[3] सरप सी ।
तारिका वलय बीच तारापति के नजीक तरनि तिमिर तरै तरिता[4] तरप सी ।
आली अंग ओझल ह्वै[5] उझकी झरोखा मृगसावक दृगनि काम पावक झरप सी ।। 4 ।।

1. मोतिन झालरि झमकनि झूमक सारी-दि० । 2. जोतिन के जराऊ-दि० । 3. मति लटपटि-दि० ।
4. तरप-दि० । 5. कै-दि० ।

जोवन भूषन रूप गुन सील विभौ कुल नेम ।
आठ अंग नाइका अरु कहिए पूरन प्रेम ।। 5 ।।
इन अंगनि स्वकीया कहौं परकीया कुलहीन ।
विभौ सील कुल नेम बिनु वेस्या लोभ प्रवीन ।। 6 ।।
तातें स्वकिया सुद्ध रस परकीया रस प्रेम ।
गुप्तादिक षट भेद तिहिं तहां न रस को नेम ।। 7 ।।

परकीया के गुप्तादिक षट्भेद ।

गुप्ता विदग्धा लक्षिता कुलटा मुदिता जानि ।
अनुशयना षट भेद ये परकीया रस हानि ।। 8 ।।
ऊढ़ा पतिरत कर्म वच मनसा उपपति लीन ।
कन्या प्रौढ़ सु अनूढ़ा गुर बंधुनि आधीन ।। 9 ।।
गुप्त रहै उपपतिहि मिलि छलि विदग्ध वच कर्म ।
लछित लक्षन लक्षिता कुलटा उलटे धर्म ।। 10 ।।

39

मुदित मुदित उपपति मिलन मिल मिलि पछिताइ।
अनुसयना षट भेद ए है गुप्तादि सुभाइ॥ 11॥

छिपी रति छैल वाकछलनि छिपावै अैल कुल त्रिय गैल छिहि छिपि[1] उघरति है।
आठो जाम वाम काम केलि[2] न अघात देव राति नियराति अति आनंद करति है।
फागु गए फीकी चितै चैत चित जी की फूल माल हरि ही की देखि दूती सों लरति है।
मानै[3] मिसकी न कोई न जानै[4] मिसकीन घात रिस की चलाइ बात सिसकी भरति है॥ 12॥

1. ०-दि० 2. केति-दि०। 3. मानौ-दि०। 4. जानौ-दि०।

अथ सामान्या।

आजु मिले बहुते दिन भावते भेंटत सेंट कछू मुख भाखौ।
ए भुज भूषन मो भुज बांधि भुजा भरि ओठ अचै चष चाखौ।
दीजिये[1] मोहि उढ़ाय जरीपट कीजिये जू जिय जो अभिलाखौ।
प्यारे हमैं तुम्हें अंतर पारत हार उतारि इतै धरि राखौ॥ 13॥

1. लीजिये-दि०।

एकै मुख सब त्रियन मैं पै रस प्रेम विवेक।
पानी पैनी धार मैं खग्ग खग्ग सब एक॥ 14॥

गुप्तादि क्रम स्वकीया बान वेद अरु वेद।
द्वै परकीया वेस्या एक सोरहो भेद॥ 15॥

एक एक बसु अवस्था आठ बीस सौ एक।
ते उत्तम मधि अध[1] त्रिसत चौरासी सु विवेक॥ 16॥

1. प्रंध-दि०।

सत्वगुणवती उत्तमा अधमा तामस रूप।
रजोगुनवती मध्यमा त्रिगुन सुभाइ अनूप॥ 17॥

तीनौं को उदाहरन।

एक असाधु बिना अपराध रहै पल आधु जु दीन लरे तें।
और कछू भली रूसै न तूसै जे जैसे को तैसी सुभाइ ढरे तें।
राधे को साध अगाध हियो कछु बैन छुवै अपराध करे तें।
ज्यों अरविंद[1] के पातन पै ठहरात न वारि के बुंद परे तें॥ 18॥

1. अरविंदन-दि०

40

इति नाइका। मुख्य गौन रसवती प्राचीन मत तीन सं चौरासी भेद नवीन मत तीन सै चवालीस।

अथ नाइक।

सुद्ध ध्रष्ट अरु चतुर पति गुप्त सु प्रगट अनिष्ट।
क्रम तें नायक चारि अनुकूल दक्ष सठ धृष्ट ॥ 19 ॥
एक नारि अनुकूल व्रत सकल त्रियन संग दक्ष।
सठ झूठी अनुकूलता लंपट धृष्ट समक्ष ॥ 20 ॥

अनुकूल।

और की चाह न[1] चाहत है चित वा हित माह उमाह मए हैं।
देव दोऊ गलबांहन के बल प्रेम नदी अवगाहन ए हैं।
और की छांह न छ्वावत[2] छांह वही छवि ही के उछाह छए हैं।
प्यारी के ऊपर छांह करे पिय पीछे फिरै परछांह भए हैं ॥ 21 ॥

1. चाहत-दि०। 2. छ्वत-दि०।

दक्षिन।

एक को तो एक से अनेकनि अनेक भांति एकहू अनेकहू रिझावै[1] अंक भरि कै।
जोई गहि रोकै सो बिलोकै अपनोई रूप एती अनुरूप कै निरूपै रूप धरि कै।
हंसे ते हंसत रूसे रूसत झुके झुकत सनमुख रहे न विमुख होत धरि[2] कै।
हाथ हाथ सुंदरी सकल साथ साथ डोलें आरसी सो निरमल निहार्‌यो हियो हरि कै[3] ॥ 22 ॥

1. अनेक जिय नेक भांति एक हू अनेकहू न रिझावै-दि०। 2. घेरि-दि०। 3. चारों चरणों का तुकांत 'का' दि०।

सठ।

सांझही सुनाई काहू आई तु सुहाग बाग बाढ़्यो अनुराग सुने सूधोई सुभाव तो।
फूली उत बेली नबेली ह्‌वै चमेली आदि चितै चहूं चन्द्रिका सरद ससि भावतो।
पून्यो की जुन्हाई मैं जुन्हाई सी मिली तूं जानि मूढ़ भयो ढूंढ़त अभै लौं हौं न पावतो।
न्यान रहि जातो प्रान पौन कढ़ि जातो देव कौन हाल होतो इहां भौन जो न आवतो ॥ 23 ॥

धृष्ट।

एकनि को अनुकूल सुन्यो पति दूसरी नारि निहारि निवारन।
औरन को सुभ लक्षन दक्षन एक सी प्रीति प्रतीति सुधारन।
आवत साधु भयो हठ कै सठ झूठियै सोहनि हाथ पसारन ॥
जानि हमैं अवलाजनि ढीठ अनीठ लगे अब लाजनि मारन ॥ 24 ॥

अथ नाइक सखा।

पीठ मर्द चिट चेट विदूषकै नायक सखा।
हित चित चतुर सहेट बहु विलास अरु हास क्रम ॥ 25 ॥

चारों को उदाहरन।

हौं इत की हित की कहिहौं जित की तित की चित की सब जानौ।
त्यों उतकी अति आतुरता लखि बातन चातुरताई की आनौ।

41

हौं न भटू[1] विट चेट चवाइ विदूषक औ न हंसी रस ठानौ।
ए अनुराग सुहाग गुमानिन[2] मानिनि मेरो कह्यो किन मानौ ॥ 26 ॥

1. होत भटू-दि० । 2. गुमाननि-दि० ।

हितू नाइका की[1] सखी नाइक कै दूती सु।
देखति सुख संपति समै दुहुनि लचावति सीसु ॥ 27 ॥

1. के-दि० ।

सखी।

सत्यवती जुवतीन को सर्वसु पर्व सु[1] पूरन पुन्य विहारो।
दूसरो देव कुलत्रिय को रचि देव विरंचि वृथा पचि हारो।
जीवन मूरि सो जोवन को गुन रूप को गर्व अनूप निहारो।
नेक जो प्रीतम को अनुराग सु भाग सखी को सुहाग तिहारो ॥ 28 ॥

1. परवसु-दि० ।

अथ दूती यथा।

बैठी कहा उठि देखौ भटू रंगभौन तुम्हैं बिनु लागत सून्यो।
चातिक लौं ररि देव तुम्हैं सु चकोर भयो चिनगी करि[1] चून्यो।
सांझ सुहाग की मांझ उदै करि सौति सरोजनि को बन[2] लून्यो।
पाउस ते उठि कीजिये चैत अमावस ते उठि कीजिये पून्यो ॥ 29 ॥

1. करै-दि० । 2. मन-दि० ।

इति श्रीमन्महाराजकुमार श्री जयसिंह विनोद देवदत्त विरचिते परकीया भेद नायक सखा दूती निरूपनो नाम षष्ठ विनोद।

अथ हास्य रसादिक रस वर्णनं दोहा।

चित थापित थिर वीज विधि होत अंकुरित भाव।
चित्तु बदलि दलफूल फल नवरस[1] सरस सुभाव ॥ 1 ॥

1. नवरसनु-दि० ।

रस सिंगार हास्य अरु करुणा रौद्र भयानक कहिये।
वीभत्सौ अद्भुत अरु सांत काव्य मते ए नव रस लहिये।
नाटक मत आठै बिन सांत समै समै भावनि ते निकसै।
भावनि सहित काव्य नाटक में कवि मुख नट चेष्टा में विकसै ॥ 2 ॥

रस अंकुर थाई विभाव रस के उपजावन।
रस अनुभव अनुभाव सात्त्विक रस झलकावन।
छिन छिन नाना रूप रसनि संचारी उझकै।
पूरन रस संजोग हाव रस रंग समुझकै।
ए होत नायकादिकनि मैं रत्यादिक रस भाव षट।
उपजावत शृंगारादि रस गावत[1] नाचत सुकवि नट।। 3 ।।

1. रस कवि गावत-दि० ।

नवरस स्थायी भाव । रति हांसी अरु सोक रिस अनु उछाह भय जानु।
जुगुपसारि विस्मयरु शांत ये नौ[1] थिति भाव बखानु।। 4 ।।

1. मनौ-दि० ।

रति बढ़ि होय सिंगार रस हांसी बढ़ि कै हास।
करुना सोक बढ़ि रौद्र रस रिस बढ़ि करै प्रकास।। 5 ।।
बढ़ि उछाह तें वीर रस बढ़ै भयानक भीति।
घिन बढ़ि कै वीभत्स बढ़ि विस्मय अद्भुत रीति।। 6 ।।
शान्तहि बाढ़े[1] शांत रस मिलि विभाव अनुभाव।
सात्विक संचारीनु लै झलकत नवो सुभाव।। 7 ।।

1. शाभहि बढ़े ते-दि० ।

जिन जिन ते जो रस बढ़ै प्रगटै जिनहि प्रभाव।
ते ते तिह तिह रस विषै है विभाव अनुभाव।। 8 ।।

हास्य रस । भाषा भूषन भेष जहं[1] उलटेई करि भूल।
हंसी सु उत्तम मध्य अध त्रिविधि हास्य को मूल।। 9 ।।

1. जिह-दि० ।

पल पीक के लीक लला के लखी अवला बिलखी बहराइ हंसी।
कर सैन करी समुझै न तऊ दुहु नैन उठी लहराइ हंसी।
सखियां अंखियानि नचाइ अचै गई ओठनि ही ठहराइ हंसी।
कवि देव चितौनिहि सौति परोसिनि खोलि हियो हहराइ हंसी।। 10 ।।

करुना रस । बिनठे ईठ अनीठ सुनि मन में उपजत सोग।
तिह आसा छूटे विषम करुन बखानत लोग।। 11 ।।
जूझि पर्यो रन रावन वीर सु सूझि पर्यो परलौ नगरी को।
जानकी आनि मिली रघुनाथ को भागु सराहि[1] सुहाग धरी को।

1. सराइ-दि० ।

43

लंकसुरी असुरीउ लै लंक तें आई ससंक सु युद्धथरी को।
सीता भई सुख मैं दुखखानि लखे बिलख्यो मुख मंदुदरी को ॥ 12 ॥

रौद्र रस। विधि असाधु अपराध करि उपजावत जिय क्रोध।
होत काम बढ़ि रौद्र रस जहां प्रवाद विरोध ॥ 13 ॥

संभु सरासन टूट्यो सुन्यो विष घूंटि मनो सुख है निघटायो।
दूसरे राम को नाम सुने तें विरोध कै क्रोध कुचोध तचायो।
भारगो भूषन कोपन को सुनि मारगो रोकि तमारगो आयो।
कौने हरी फनि की मनि सीस ते कौने धौ सोवत सिंह जगायो ॥ 14 ॥

राउ भगवंत रुख अनख बढ़ायो मुख भौंह कर धनुष चढ़ायो इक बार हीं।
कोप करि कापर धौं पकरि लीनी आजु अरि कोप करि लोप करि है सवार हीं। ?
आगरे की पौरि तें प्रयाग लौं पुकारि परी बूझौ उपहार लै कि सूझौ उपहार हीं।
देव दुहू धार मैं अधार निरधारन को सूधे तर धार हीन सूधे सरधार हीं ॥15॥

बीर रस। रन वैरी सन्मुख दुखी भिक्षुक आए द्वार।
युद्ध दया अरु दान हित होत उछाह उदार ॥ 16 ॥

राजकुल मंडन अदंड अरि दंडन अखिल खल खंडन अखंड बलवंत है।
साधनि को साधक असाधिन को बाधक समाधक सकत सुख संपति समंतु है।
दार गुन[1] आगर उजागर सुजस दया सागर गहीर रस नागर महंतु है।
देव रघुवीर बलवीर की कृपा तें परवीर प्रहरत नरवीर भगवंतु है ॥ 17 ॥

1. दारन-दि०।

देव भगवंत राउ मौज ते दयाउ तिहिं सींची सब भूमि सुधा बीची को विवेकु है।
दीसत दिगीस सो असीसत है ईस जाहि जाके सीस सकल छितीस अभिषेकु है।
सिंह लौं गरजि गजै राज गज पुंजन सिंह लौं बिदारै असुर अनेक है।
सामुहे महारन सुभट भरि भारन में सूर सरदारन हजारन में एकु है ॥18॥

भयानक रस। वस्तु भयानक देखि सुनि करि अपराध अनीति।
मिलै सत्रु भूतादि ग्रह सुमिरे उपजति भीति ॥ 19 ॥

भीति बढ़े रस भयानक दृग जल वेपथ अंग।
चकित चित्त चिन्ता चपल विवरनता सुरभंग ॥ 20 ॥

देव रिपु भूपन[1] की सुंदरी अनूप गुन भूषन सरापे गुन रूप मुख मूंदती।
राजै राज रंजनि जै देखै दुख भंजनि चपल दृग कंजन हरासै हिय गूंदती।
राउ भगवंत के नगारनि सुनति ते[2]नगारिनु सुनति कढ़ी गढ़ी गढ़ रूंदती।
ओटक अगारन ते कोट कै पगारन ते जोट कै नदी के कगारनि ते कूदती ? 21 ॥

1. भूषन-दि०। 2. ते न-दि०।

वीभत्स रस । वस्तु घिनौनी देखि कै उपजै घिन जिय मांहि ।
घिन बाढ़ै वीभत्स रस चित की रुचि मिटि जाहिं ॥ 22 ॥
जान निसार नवाब के सीस परी जब सार की धार खटख्खट ।
टूटि परे रुहिरा अरु[1]रुंड सो छूटि परे छिति मंड भटम्भट ।
भूत विताल[2]सिंगाल सिवागन नाचत दै वर ताल पटप्पट ।
रचिर बीचु परी चटि चाटत चाम चबात है खाट चटच्चट ॥ 23 ॥

1. रुहिरारु-दि० । 2. विनाल-दि० ।

अद्भुत रस । आहचरज देखे सुने विस्मय बाढ़त चित्त ।
अद्भुत रस विस्मय बढ़ै अचल सचकित निमित्त ॥ 24 ॥
देव दुख दीननि की काटि डारी विपतियो संपति चहू गहि आन्योई चहति हैं ।
वारी कारी देखत निकारी सेत कीरति 000 वाई घांई बांधी सदा दाहिनी लहति.है । ?
धार के अधार धीर ल्याउत धुरंधरनि धीरनि धीर निराधारनि उधारन कहति है ।
बैरिन बिचारिनु की प्रानन की प्यासी सुवरन मैं लवटी 000 रहति है ॥ 25 ॥
श्री भगवंत महा बलवंत चलाई है धर्म के मारग मेडे ।
काबिल तें पटना करनाटक लौं लागै न पाटन बाट उमेडे ।
वारि गहीर नदी तरवारि बहाइ क्यों बैरिन के सिर बेंडे ।
घाटहि तें उतरे वे गए वहि बारह बाट अठारह पैंडे ॥ 26 ॥

शांत रस । तत्व ज्ञान नयत्व करि उपजत सात्विक बुद्धि ।
शांत रस सम बुद्धि बढ़ि पछितायो मत सुद्धि ॥ 27 ॥
करत उपास बन वास[1]भूमि आसन उदास ह्वै अवासन जे संपति अनंत के ।
जट जूट उत्तमंग डोलत कुरंग संग रूखे सूखे अंग भूखे रंग सरनंत के ।
छांड़ेई बनैगी[2]पिय विग्रह परिग्रहनि निग्रहन ह्वै है इन इंद्रिय दुरंत के ।
जोग चाहौ रहौ जु सरन भगवंत के कि भोग[3]चाहौ रहौ जू चरन भगवंत के ॥ 28 ॥

1. बन नास-दि० । 2. छाँड़ेई नैंगी-दि० । 3. रोग-दि० ।

हास्य आदिक आठ रस इह विधि बरनत लोग ।
थिति विभाव अनुभावऊ संचारिन के योग ॥ 29 ॥
सिद्धि श्री राधा रमन भाल अविधि ब्रजचंद ।
गन रघु गोकुलनाथ जय सिव दशरथ नंद नंद ॥ 30 ॥
श्री जयसिंह महीप वर श्री भगवंत कुमार ।
राजकाज सुख साज युत बिलसौ सुजस उदार ॥ 39 ॥
नगर इटाए बास जिहि काश्यप वंस प्रमोद ।
देवदत्त कवि कृत सरस श्री जयसिंह विनोद ॥ 32 ॥

इति श्रीमन्महाजाधिराज श्री चौहान वंशावतंस श्री भगवंतराइ वंदन जगदानंद नंदन श्री जयसिंह कुमार सुख संदोहार्थ जयसिंह विनोद ग्रंथे कवि देवदत्त विरचिते हास्य दशादिक दशाष्ट स्पष्टीकरन सप्तम विनोदः ।